हर्ष

(चार अंकों का एक ऐतिहासिक नाटक)

गोविन्ददास

1971

एस० चन्द एण्ड कम्पनी (प्रा०) लि०

दिल्ली — नई दिल्ली — जालन्धर — लखनऊ
बम्बई—कलकत्ता—मद्रास—हैदराबाद—पटना

एस० चन्द एण्ड कम्पनी (प्रा०) लि०
रामनगर, नई दिल्ली-55

शाखाएँ :

फव्वारा, दिल्ली
अमीनाबाद पार्क, लखनऊ
32, गणेशचन्द्र एवेन्यू, कलकत्ता-13
सुल्तान बाजार, हैदराबाद
माई हीरां गेट, जालन्धर
102, प्रसाद चैम्बर्स, रौक्सी सिनेमा के पीछे, बम्बई-4
35, माउन्ट रोड, मद्रास-2
ऐग्ज़ीबीशन रोड पटना

प्रथम संस्करण, १६५७
पंचम संस्करण, १६६०
छठा संस्करण, १६६१
पुनः मुद्रित, १६७१

मूल्य : २·२५

प्रकाशक : एस० चन्द एण्ड कम्पनी (प्रा०) लि०, रामनगर, नई दिल्ली-55
मुद्रक : राजेन्द्र प्रिंटर्स, रामनगर, नई दिल्ली-55

निवेदन

यह नाटक मेरी तीसरी जेल-यात्रा के समय नागपुर-जेल में लिखा गया है। मैंने इस बात पर ध्यान रखने का प्रयत्न किया है कि सम्राट् हर्ष के चरित्र का जैसा वर्णन इतिहासकारों ने किया है, मेरा वर्णन उसके विपरीत न हो। सम्राट् हर्ष भारत के उन सम्राटों में है जिनका वीरता और सच्चरित्रता दोनों ही दृष्टियों से, इतिहास में सर्वोच्च स्थान है। महाकवि बाण और चीनी यात्री यानचाँग दोनों ने उनके चरित्र का जो वर्णन किया है उससे पद-पद पर उनके इन महत् गुणों का परिचय मिलता है।

हर्ष विवाहित थे या अविवाहित, इस सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद है। महाकवि बाण के 'हर्ष-चरित' में यद्यपि हर्ष की बहिन राज्यश्री के विवाह का विस्तार से वर्णन है तथापि हर्ष के विवाह के सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं। यानचाँग ने भी उनके विवाह अथवा उनकी रानी का कोई उल्लेख नहीं किया। एक स्थान पर उन्होंने यह अवश्य लिखा है कि हर्ष ने अपनी पुत्री का विवाह वल्लभी-नरेश सेनापति ध्रुवसेन से किया था। मैंने हर्ष को अविवाहित ही माना है और उनकी इस पुत्री को उनकी पालित पुत्री।

इतिहासकारों ने यह भी माना है कि हर्ष ने अपनी बहिन राज्यश्री के साथ आर्यावर्त्त का राज्य किया। नाटक में सौन्दर्य लाने के लिए मैंने राज्यश्री का अभिषेक कराया है।

हर्ष का शिव, सूर्य एवं बुद्ध का संयुक्त पूजन, सर्वस्व-दान तथा कुछ धर्मान्ध ब्राह्मणों द्वारा हर्ष की हत्या का यत्न एवं इस संयुक्त पूजन के समय मण्डप में अग्नि का लगाया जाना, ये सब ऐतिहासिक घटनाएं हैं। हाँ, शिव, सूर्य एवं बुद्ध का संयुक्त पूजन कान्यकुब्ज में तथा सर्वस्व-दान प्रयाग में होता था।

सुविधा और सौन्दर्य-वृद्धि के विचार से मैंने इन दोनों घटनाओं का एकीकरण कर दिया।

हर्ष और शशांक नरेन्द्रगुप्त का संघर्ष तथा हर्ष के मित्र माधवगुप्त का गुप्तवंशज होना ये भी ऐतिहासिक बातें हैं। माधवगुप्त का पुत्र आदित्यसेन भी ऐतिहासिक व्यक्ति है। हर्ष का आर्य और बौद्ध-धर्म पर समान रूप से प्रेम तथा शशांक नरेन्द्रगुप्त की आर्य-धर्म में कट्टरता, बौद्ध-धर्म से द्वेष और बुद्ध-गया के बोधि-वृक्ष को कटवाना ये बातें भी इतिहास-सिद्ध हैं। हाँ, वर्द्धन और गुप्त-वंश के संघर्ष का जो स्वरूप नाटक में दिया गया है उसके लिए मैं जिम्मेदार हूँ।

राज्यश्री की सखी अलका को छोड़कर नाटक के शेष सब पात्र ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। हर्ष की पालित पुत्री और माधवगुप्त की स्त्री के नाम ज्ञात न हो सकने के कारण मैंने उनके नाम जयमाला और शैलबाला रख दिये हैं।

इस प्रकार ऐतिहासिक घटनाओं के क्रम में परिवर्तन न करते हुए भी, सुविधा और सौन्दर्य के लिए मैंने उन्हें आगे-पीछे करने की स्वतन्त्रता ली है, परन्तु यथाशक्य इससे भी बचने का प्रयत्न किया है।

मेरा मत है कि नाटक, उपन्यास या कहानी-लेखक का यह अधिकार नहीं है कि वह किसी भी पुरानी कथा को तोड़-मरोड़कर उसे एक नयी कथा ही बना दे। हाँ, कथा का अर्थ (Interpretation) वह अवश्य अपने मतानुसार कर सकता है। मैंने इस नाटक के लिखने में यही नीति अपने समक्ष रखी है तथा सर्वत्र इसी का पालन किया है।

प्राचीनता की झलक लाने के लिए मैंने सम्बोधन प्राचीन काल के ही रखे हैं; साथ ही प्राचीनता की यही झलक लाने के लिए भाषा में अरबी और फारसी शब्दों से बचने का यत्न किया है। भाव, दृश्य और वेश-भूषा भी प्राचीन काल के अनुरूप रहें, इसका भी ध्यान रखा है।

इस नाटक के पदों में दो पद्यों को छोड़कर शेष मेरे लिखे हुए हैं। लकड़ी उठानेवाली स्त्रियों द्वारा गाया हुआ पद्य कविता-कौमुदी के पाँचवें भाग ग्राम

गीत से लिया गया है और दूसरे अंक के पहले दृश्य में नेपथ्य में गाया हुआ गीत मेरी पुत्री रत्नकुमारी का लिखा हुआ है।

इस नाटक के लिखने में, निम्नलिखित ग्रन्थों मे सहायता ली गयी है—(१) विन्सेन्ट स्मिथ द्वारा लिखित 'हिस्ट्री ऑफ ऐन्शेण्ट इण्डिया', (२) सी० वी० वैद्य द्वारा लिखित 'हिस्ट्री ऑफ मेडिवल हिन्दू इण्डिया', (३) महाकवि बाण द्वारा लिखित 'हर्ष-चरित' और (४) चीनी यात्री यानचाँग का थामस वाल्टर्स द्वारा सम्पादित 'यात्रा-वर्णन'।

—गोविन्ददास

मुख्य पात्र

शिलादित्य	: स्थाण्वीश्वर का राजकुमार, पीछे से हर्षवर्द्धन नाम धारण कर स्थाण्वीश्वर का राजा
माधवगुप्त	: शिलादित्य का मित्र
अवन्ति	: स्थाण्वीश्वर का महामन्त्री
सिंहनाद	: स्थाण्वीश्वर का महासेनापति
भण्डि	: स्थाण्वीश्वर का सेनापति, पीछे से कान्यकुब्ज का महासेनापति
आदित्यसेन	: माधवगुप्त का पुत्र
शशांक नरेन्द्रगुप्त	: गौड का राजा
यशोधवलदेव	: गौड का सेनापति
यानच्वांग	: चीनी यात्री
राज्यश्री	: शिलादित्य की बहिन, पीछे से उत्तर भारत की सम्राज्ञी
अलका	: राज्यश्री की सखी
जयमाला	: शिलादित्य की पालित पुत्री
शैलबाला	: माधवगुप्त की स्त्री ; आदित्यसेन की माता

स्थाण्वीश्वर की राजसभा के सदस्य और सैनिक, विन्ध्याटवी के राजा और सैनिक, कान्यकुब्ज के ब्राह्मण, पुरवासी और बौद्ध भिक्षु, नालन्दा के अध्यापक और विद्यार्थी, महाधर्माध्यक्ष, प्रतिहारी इत्यादि।

स्थान

स्थाण्वीश्वर, विन्ध्याटवी, कान्यकुब्ज, कर्णसुवर्ण

'हर्ष' नाटक में आये हुए कुछ प्राचीन शब्दों का अर्थ

महामात्य	=	प्रधान मन्त्री
परमभट्टारक	=	सम्राट्
महाबलाधिकृत	=	प्रधान सेनापति
बलाधिकृत	=	सेनापति
दंडपाशिक	=	कारागृह का प्रधान राज्य-कर्मचारी

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान : स्थाण्वीश्वर के राज-प्रासाद में राज-सभा-कक्ष

समय : संध्या

[विशाल कक्ष है। कक्ष की छत स्थूल पाषाण-स्तम्भों पर स्थित है। प्रत्येक स्तम्भ के नीचे गोल कमलाकार कुंभी (चौकी) और भरणी (टोड़ी) है। प्रत्येक भरणी में दोनों ओर पाषाण की एक-एक गज-शुण्ड बनी है, जो ऊपर की ओर उठकर छत को स्पर्श किये हुए है। कुंभियों, भरणियों और स्तम्भों पर खुदाव का काम है। तीन ओर भित्ति (दीवाल) है। छत और भित्ति सुन्दर रंगों में रँगी हुई हैं, जिनपर चित्रावली है। दाहिनी और बाँयी ओर की भित्ति के सामने के सिरों पर एक-एक द्वार है। द्वार खुले हुए हैं और उनमें से बाहर के उद्यान का कुछ भाग दिखाई देता है, जो डूबते हुए सूर्य की सुनहरी किरणों से रँग रहा है। द्वारों की चौखटों और कपाटों की लकड़ियों में भी खुदाव का काम है। कक्ष की भूमि पर हरित रंग की बिछावन बिछी हुई है और उस पर तीन पंक्तियों में दस आसन्दियाँ (चौकियाँ) रखी हैं; सामने की पंक्ति में चार और उसके दोनों ओर की दो पंक्तियों में तीन-तीन। आसन्दियाँ काष्ठ की हैं और उन पर गद्दियाँ बिछी हैं, जिन पर तकिये लगे हैं। गद्दियाँ और तकिये श्वेत वस्त्र से ढके हुए हैं। सामने की पंक्ति के बीच की दो आसन्दियों पर अवन्ति और सिंहनाद बैठे हुए हैं। अवन्ति की अवस्था लगभग ५५ वर्ष की है। वह गौरवर्ण का ऊँचा किन्तु, इकहरे शरीर का मनुष्य है। सिर, मूँछों और दाढ़ी के लम्बे बाल आधे श्वेत हो गये हैं। श्वेत रंग का एक उत्तरीय (दुपट्टा) और अधोवस्त्र (धोती) इस प्रकार दो वस्त्र, धारण किए है। इनकी किनार सुनहरी है। सिर खुला है और मस्तक

पर केसर का त्रिपुण्ड है। कानों में कुण्डल, गले में हार, भुजाओं पर केयूर, हाथों में वलय और अंगुलियों में मुद्रिकाएँ धारण किये हुए हैं। सब भूषण रत्न-जटित हैं। पैरों की काष्ठ-पादुकाएँ आसन्दी के नीचे उतरी हुई रखी हैं। सिंहनाद की अवस्था लगभग ४० वर्ष की है। वह गेहुँए रंग का ऊँचा और गठे हुए शरीर का कुछ मोटा व्यक्ति है। सिर, मुँह और गलमुच्छे—सबके बाल काले हैं। उसके वस्त्राभूषण भी अवन्ति के सदृश ही हैं। सिर खुला है और मस्तक पर वह भी त्रिपुण्ड लगाये है। वह आयुध भी धारण किये है। बाँये कन्धे पर धनुष, पीठ पर तरकस और कमर में खड्ग है। शेष आठ आसन्दियों पर राजसभा के अन्य सदस्य बैठे हैं। सब की अवस्था ४० और ४५ वर्ष के बीच में है तथा सब की वेशभूषा अवन्ति और सिंहनाद के समान ही है, परन्तु सभी आयुधों से रहित हैं। किसी का वर्ण गौर है और किसी का गेहुँआँ। किसी के केवल मूँछें हैं, किसी के गलमुच्छे और किसी के दाढ़ी भी। सब की काष्ठ-पादुकाएँ आसन्दियों के नीचे उतरी हुई रखी हैं। सब के मुख कुछ नीचे झुके हुए हैं और उन पर गहरी चिन्ता झलक रही है। सभा-कक्ष में निस्तब्धता छायी हुई है।]

अवन्ति : (कुछ समय पश्चात् सिर उठाते हुए धीरे-धीरे) तो इस समय गौणाधिपति शशांक नरेन्द्रगुप्त से बदला लेने के विचार को छोड़कर केवल राज्य-रक्षा की ओर लक्ष रखा जाय, यही राज-सभा का निर्णय है ?

एक सदस्य : (सिर उठाकर) हाँ, महामात्य, और तो कोई उपाय नहीं दीखता।

अवन्ति : परमभट्टारक महाराजाधिराज प्रभाकरवर्द्धन के कैलासवास होते ही स्थाण्वीश्वर के राज्यवंश और राज्य की यह दशा होगी कि हम परमभट्टारक महाराजाधिराज राज्यवर्द्धन के हत्यारे शशांक से बदला तक न ले सकेंगे, यह मैं स्वप्न में भी न सोच सकता था। स्थाण्वीश्वर के भूत-काल की शक्ति और वैभव की यह दुर्दशा !

सिंहनाद : (सिर ऊँचा कर) यदि हम लोग राजपुत्र शिलादित्य को किसी प्रकार सिंहासन ग्रहण करा सकें तो भविष्य के पुनः उज्ज्वल होने में कम से कम मुझे सन्देह नहीं है। महाराजाधिराज राज्यवर्द्धन ने सिंहासनासीन होकर मालवेश देवगुप्त से कान्यकुब्जाधिपति के वध करने एवं राजपुत्री राज्यश्री के वैधव्य का तथा उन्हें बन्दी बनाने का तत्काल बदला लिया ही था, महामात्य। यह तो शशांक ने छल से परमभट्टारक की हत्या की; अन्यथा उन्होंने समस्त भारत के दिग्विजय करने के लिये प्रस्थान ही किया था।

अवन्ति : आप ठीक कहते हैं, महबलाधिकृत ! यदि हम राजपुत्र शिलादित्य को सिंहासन पर बिठा सकें तो अब भी सबकु-छ सम्भव है; परन्तु उनका सिंहासन ग्रहण करना ही तो सबसे बड़ी कठिनाई है। महाराजाधिराज राज्यवर्द्धन के वध का समाचार पाते ही उन्हें सिंहासनासीन होना था, राज्य-सिंहासन तो क्षणमात्र भी रिक्त नहीं रह सकता, परन्तु वे स्वीकार कहाँ कर रहे हैं ? जब महाराजाधिराज राज्यवर्द्धन के सदृश सहोदर भ्राता के नीचतापूर्वक वध होने और राजपुत्री राज्यश्री-सदृश सहोदरा भगिनी के बन्धन-मुक्त न होने पर भी राजपुत्र सिंहासन ग्रहण न करने की अपनी टेक पर स्थित हैं, तब यह आशा कैसे की जा सकती है कि भविष्य में वे सिंहासन ग्रहण करने के लिये तैयार हो जायँगे ?

सिंहनाद : यद्यपि मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता, किन्तु राजपुत्र का सिंहासन ग्रहण करना कदाचित् अब सम्भव हो सकेगा।

अवन्ति : (उत्सुकता से) यह कैसे, महाबलाधिकृत ?

एक सदस्य : यही यदि हो जाय तो क्या पूछना है ?

दूसरा सदस्य : अवश्य।

अन्य कुछ सदस्य : (एक साथ) निस्सन्देह-निस्सन्देह।

सिंहनाद : बात यह है कि महाराजाधिराज राज्यवर्द्धन के वध और राजपुत्री राज्यश्री के बन्धन का राजपुत्र के हृदय पर कोई प्रभाव न पड़ा हो, यह बात नहीं है।

अवन्ति : प्रभाव पड़ना तो स्वाभाविक बात है, महाबलाधिकृत ! महोदर भ्राता के इस प्रकार वध और सहोदरा भगिनी के इस प्रकार वैधव्य और वन्दी होने का प्रभाव भला क्योंकर न पड़ता ? परन्तु इन प्रभावों की अपेक्षा बौद्ध धर्म तथा कुछ विचित्र विचारों का प्रभाव उनके हृदय पर कहीं अधिक है ।

एक सदस्य : हाँ, अब तो राज्यवंशजों के सदृश वेश-भूषा तक उन्होंने परित्याग कर दी है । बौद्ध-भिक्षुओं के सदृश पीत चीवर धारण किये हुए, बिना किसी आभूषण और आयुध के बिना परिचारकों और वाहन के, वे यत्र-तत्र घूमा करते हैं ।

सिंहनाद : परन्तु मुझे विश्वसनीय सूत्र से पता चला है कि इधर एक-दो दिवसों से उनकी मानसिक अवस्था में परिवर्तन हो रहा है ।

अवन्ति : यह पता आपको किससे लगा ?

सिंहनाद : उनके परममित्र कुमारामात्य माधवगुप्त से ।

[माधवगुप्त का नाम सुनकर सब लोग चौंक पड़ते हैं । कुछ देर तक निस्तब्धता रहती है और सब लोग विचारमग्न हो जाते हैं ।]

अवन्ति : **(कुछ देर पश्चात् धीरे-धीरे)** देखिए, महाबलाधिकृत, राज-सभा के सम्मुख तो सब बातें स्पष्ट कही जा सकती हैं, अतः मैं माधवगुप्त के सम्बन्ध में स्पष्ट ही कहूँगा; क्योंकि किसी के कथन पर विचार करने के पूर्व, कहने वाला कौन है, इस पर विचार करना आवश्यक है ।

सिंहनाद : हाँ हाँ, अवश्य !

अवन्ति : माधवगुप्त की ज्ञान-शक्ति उनकी अवस्था से कहीं आगे चलती है, इसमें सन्देह नहीं; परन्तु उन पर मेरा थोड़ा भी विश्वास नहीं है, यह बात, कम से कम, राज सभा के अधिकांश सदस्य जानते हैं । जिस समय में परमभट्टारक महाराजाधिराज प्रभाकरवर्द्धन ने मालव देश पर विजय कर उन्हें और उनके भ्राता कुमारगुप्त को मालव देश से लाकर राजपुत्रों के संग रखा, उसी समय से मैं इस सहवास को उचित नहीं समझता । मगध के

प्राचीन गुप्त-वंशज, चाहे वे मालव देश में राज्य करते हों और चाहे गौड़ में, पराजित होकर कहाँ तक वर्द्धन-वंश के शुभचिन्तक रहेंगे, यह विचारणीय है; क्योंकि मौखरि-वंश और गुप्त-वंश की परम्परागत शत्रुता है और मौखरि तथा वर्द्धन-वंश का निकट का सम्बन्ध है।

सिंहनाद : परन्तु, कुमारगुप्त और माधवगुप्त अपने ज्येष्ठ भ्राता मालवेश देवगुप्त का वध होने पर भी वर्द्धनों के शुभचिन्तक रहे और माधवगुप्त तो महाराजाधिराज राज्यवर्द्धन के कारण कुमारगुप्त के वध होने पर भी राजपुत्र शिलादित्य के स्नेह के कारण उनके संग है।

अवन्ति : (महाबलाधिकृत, क्षमा कीजिएगा, यदि मैं यह कह दूं कि सैनिक राजनैतिक दांवपेचों से प्रायः अनभिज्ञ रहते हैं। मुझे माधवगुप्त पर अत्यधिक सन्देह है; और जब उन्होंने यह संवाद दिया है कि राजपुत्र की मानसिक अवस्था में परिवर्तन हो रहा है तब मैं इस सम्वाद को केवल संदेह ही नहीं, भय की दृष्टि से देखता हूँ। आप जानते हैं कि माधवगुप्त का राजपुत्र पर कितना अधिक प्रभाव है ?)

सिंहनाद : परन्तु महामात्य, मुझे तो यही सम्वाद मिला है कि राजपुत्र की मानसिक अवस्था में सिंहासन ग्रहण करने के पक्ष में परिवर्तन हो रहा है, इसमें माधवगुप्त का क्या षड्यन्त्र हो सकता है ?

अवन्ति : **(कुछ सोचते हुए)** सो तो कहना इस समय कठिन है; परन्तु माधवगुप्त से प्रभावित होकर ही राजपुत्र ने सिंहासन न ग्रहण करने का निश्चय किया था और अब माधवगुप्त ही सवाद लाते हैं कि सिंहासन ग्रहण करने के पक्ष में राजपुत्र की प्रवृत्ति हो रही है। इन सब बातों में मुझे कुछ न कुछ रहस्य दिखाई देता है।

[फिर कुछ देर तक निस्तब्धता रहती है।]

अवन्ति : **(कुछ देर पश्चात्)** अच्छा, इस समय माधवगुप्त का विषय छोड़ दीजिए, क्योंकि आप तथा मैं सभी जानते हैं कि राजपुत्र उन पर अत्यधिक प्रेम रखते हैं और यह सहवास छूटना सरल

नही है। इस समय तो मैं यह जानना चाहता हूँ कि जब तक राजपुत्र अपने सिंहासन ग्रहण न करने के निश्चय पर स्थित हैं, तब तक राजसभा राज्य-रक्षा के अतिरिक्त और कुछ करने के लिए तैयार नहीं, यह तो अन्तिम निर्णय है न?

सिंहनाद : (सब सदस्यों की ओर देखते हुए) यही तो सबका मत जान पड़ता है।

एक सदस्य : हाँ, क्योंकि अन्त कोई उपाय ही नहीं है। हूण-युद्ध में हमारी बहुत सी शक्ति का व्यय हो गया, रही-सही शक्ति मालवेश देवगुप्त से युद्ध करने में लग गयी; महाराजाधिराज राज्यवर्द्धन के संग में गयी हुई सेना और बलाधिकृत भण्डि अब तक लौटे नहीं हैं। इसके अतिरिक्त हमारे पास इस समय न यथेष्ट सेना है, न धन।

दूसरा सदस्य : और जन एवं धन देकर शशांक से बदला लेने के लिए प्रजा को हम उत्तेजित कर सकेंगे, इसकी हमें आशा नहीं।

तीसरा सदस्य : हमें प्रतिकार के प्रयत्न में इस समय सफलता मिल ही नहीं सकती; शत्रु-पक्ष अत्यन्त प्रबल है।

चौथा सदस्य : और यदि हम असफल हुए तो स्थाण्वीश्वर पर भयानक आपत्ति आने में कोई सन्देह नहीं न रहेगा।

तीनों सदस्य : (एक साथ) ठीक!

अवन्ति : (कुछ ठहरकर विचार करते हुए) तब मैं राजसभा के सम्मुख यह प्रस्ताव उपस्थित करना चाहता हूँ कि हम लोग राजपुत्र से स्पष्ट कह दें कि या तो वे सिंहासनासीन होना स्वीकार करें अथवा हम सब राजसभा से अपने-अपने पदों का त्याग करते हैं।

[अवन्ति का प्रस्ताव सुनते ही कुछ सदस्य चौंक पड़ते हैं, कुछ विचार-मग्न हो जाते हैं अतः फिर निस्तब्धता छा जाती है।]

सिंहनाद : (धीरे-धीरे) महामात्य का यह प्रस्ताव कितना गम्भीर है, इस पर हम सब को अत्यन्त ध्यानपूर्वक विचार करना चाहिए। **(कुछ ठहरकर)** यदि राजपुत्र ने सिंहासन ग्रहण करना स्वीकार कर लिया तो कोई बात ही नहीं; परन्तु यदि उन्होंने यह न किया

तो फिर हम सबों को अपने पद छोड़ने ही होंगे, और ऐसी अवस्था में स्थाण्वीश्वर के राज्य की क्या दशा होगी ?

अवन्ति :(देखिए, महाबलाधिकृत,(शताब्दियों से इस देश में प्रजातन्त्र सत्ता नहीं है। हमारी यह राजसभा तथा इस सभा के सदृश जितनी भी राजसभाएँ इस देश में हैं, वे सब एक प्रकार से राजाओं को मन्त्रणा मात्र देने का अधिकार रखती हैं। राजा ही उन्हें नियुक्त और वही उनमें परिवर्तन करता है। सम्राटों और राजाओं के हाथों में सारी सत्ता के केन्द्रीभूत होने के कारण प्रजा का राज-कार्यों में बहुत थोड़ा अनुराग रह गया है। वह केवल वीर-पूजक हो गयी है और सच्चे वीर ही उसका उपयोग करने की क्षमता रखते हैं। यही कारण है कि किसी भी वंश में वीर के न रहते ही सत्ता उस वंश के हाथ से दूसरे वंश के हाथ में तत्काल चली जाती है और जो भी राजा होता है, प्रजा आँख मूँदकर उसका अनुगमन करती है) हमारा स्थाण्वीश्वर का राज्य भी आज इसी परिस्थिति का आखेट हो रहा है। हमारे राजा का वध हो गया है, परन्तु जिसने यह किया है उससे प्रति-कार लेने में हम अपने को असमर्थ पाते है; इसीलिए न कि हमारे राज्य पर इस समय किसी वीर राजा का छत्र नहीं, जो प्रजा के जन और धन का उपयोग कर शत्रुओं को नीचा दिखा सके ? राजसभा के सदस्यों की बात प्रजा मानेगी, ऐसा हम सदस्यों तक को विश्वास नहीं। क्या आप लोग समझते हैं कि बिना राजा के हम राज्य-रक्षा कर सकेंगे ? मुझे तो इसकी बहुत कम आशा है। यदि राजसभा, बिना राजा के, शत्रु से बदला लेकर राज्य-रक्षा कर सके तो इससे अच्छी कदाचित् कोई बात न होगी; क्योंकि यह, एक प्रकार से, शताब्दियों पूर्व इस देश में जो प्रजातन्त्र थे, उनकी ओर बढ़ना और किसी भी राजा का अनु-गमन करने वाली प्रजा की प्रवृत्ति के मूलोच्छेदन का आरम्भ होगा। परन्तु, राजसभा की आज की चर्चा सुनकर मुझे इसकी थोड़ी भी आशा नहीं है। जबकि कुछ दिनों में अन्य किसी

न किसी वीर का स्थाण्वीश्वर पर अधिकार होना ही है और हमारे पद जाने ही हैं, तब आज ही यदि वह समय आ जावे तो कौन-सी बड़ी भारी हानि हो जायगी ? आज तो हमें यह भी आशा है कि कदाचित् राजपुत्र शिलादित्य ही सिंहासन ग्रहण कर लें। परन्तु यदि अन्य किसी ने आकर हमारे पद छीन लिये तब तो यह आशा भी न रह जायगी।

[कुछ देर तक फिर निस्तब्धता रहती है।]

एक सदस्य : मैं महामात्य से सहमत हूँ।

दूसरा सदस्य : (सिर हिलाते हुए) मुझे भी महामात्य का कथन उचित जान पड़ता है, विशेषकर इसलिए कि महाबलाधिकृत को विश्वसनीय सूत्र से पता चला है कि राजपुत्र की मानसिक अवस्था में परिवर्तन हो रहा है।

तीसरा सदस्य : और यदि सचमुच ही उनकी मानसिक अवस्था में परिवर्तन हो रहा है तो राजसभा के समस्त सदस्यों के पद-त्याग का यह निर्णय सुन उस परिवर्तन में सहायता पहुँचना निश्चित है।

चौथा सदस्य : (सिर हिलाकर) महामात्य का कथन ही ठीक जान पड़ता है।

अन्य कई सदस्य : (एक साथ) यही किया जाय, यही किया जाय !

अवन्ति : अच्छी बात है। राजसभा के इस निर्णय को मैं राजपुत्र की सेवा में उपस्थित कर दूँगा। मेरे साथ यदि महाबलाधिकृत भी जायँगे तो अधिक उपयुक्त होगा।

सिंहनाद : मैं तैयार हूँ !

अवन्ति : (कुछ ठहर कर) तब आज का कार्य समाप्त हुआ।

[अवन्ति उठता है। शेष सब सदस्य भी उठते हैं। सबका पादुका पहनकर दाहिनी ओर के द्वार से प्रस्थान। पट-परिवर्तन होता है। भित्तियाँ, उद्यान के हरित कोट, छत, आकाश और स्तम्भ, अशोक वृक्षों में परिवर्तित हो, सभा-भवन का दृश्य उद्यान में परिणत हो जाता है।]

दूसरा दृश्य

स्थान : स्थाण्वीश्वर के राजोद्यान का अशोक-कुञ्ज

समय : सन्ध्या

[साधारणतया सुन्दर उद्यान है। दूरी पर उद्यान का हरितकोट दृष्टिगोचर होता है। बीच में अशोक-वृक्षों का कुञ्ज है। नीचे, घास की हरी भूमि पर दस आसन्दियाँ रखी हुई हैं। सारा दृश्य डूबते हुए सूर्य की सुनहरी किरणों से आलोकित है। शिलादित्य और माधवगुप्त का प्रवेश। दोनों गौरवर्ण और गठीले शरीर के अत्यन्त सुन्दर युवक हैं। दोनों की मूँछों की रेख निकल रही हैं। शिलादित्य की अवस्था लगभग सोलह वर्ष की है और माधवगुप्त की अठारह; परन्तु दोनों अपनी अवस्था की अपेक्षा अधिक वय के जान पड़ते हैं। दोनों के मुखों पर गाम्भीर्य का पूर्ण साम्राज्य है। शिलादित्य पीत रंग का उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किये हुए हैं। सिर खुला हुआ है और सिर के केश भी बहुत बड़े नहीं हैं। समस्त शरीर भूषणों से रहित है। माधवगुप्त श्वेत रंग का उत्तरीय और अधोवस्त्र पहने है, जिनकी सुनहरी किनार हैं। उसका भी सिर खुला हुआ है और उस पर लम्बे बाल लहरा रहे हैं। वह कुण्डल, हार, केयूर, वलय और मुद्रिकाएँ भी धारण किये है। सारे भूषण स्वर्ण के तथा रत्नजटित हैं। दोनों काष्ठ की पादुका पहने हैं।]

शिलादित्य : (लम्बी साँस लेकर) माधव, इस शोकमय काल में, इस अशोक-कुञ्ज के नीचे, सन्ध्या-समय कुछ शान्ति मिल जाती थी; किन्तु तुमने इधर दो दिवसों से हृदय में कुछ ऐसे विचारों की उत्पत्ति कर दी है, कुछ ऐसा आन्तरिक संघर्ष मचवा दिया है कि वह शान्ति भी योजनों दूर चली गई। **(आगे बढ़कर एक आसन्दी पर बैठता है।)**

माधवगुप्त : (दूसरी आसन्दी पर बैठते हुए) राजपुत्र, मुझे बाल्यकाल

से ही आपके पूज्य पिता कलासवासी परमभट्टारक महाराजाधिराज प्रभाकरवर्द्धन ने मालव देश से लाकर आपकी सेवा में इसीलिए रखा और शिक्षित कराया है कि मैं समय-समय पर आपको मन्त्रणा दे सकूँ। मैं जानता हूँ कि वर्द्धन-वंश के प्राचीन राजकर्मचारी मुझे सन्देह की दृष्टि से देखते हैं, आपका जो मुझ पर यह स्नेह है उसे आपके लिए हितकर न समझ अहितकर समझते हैं; परन्तु......

शिलादित्य : (बीच ही में) जब-जब तुम्हें सम्मति देने का अवसर आता है तब-तब तुम्हारे मन में यह अविश्वास की बात उठे बिना नहीं रहती, माधव !

माधवगुप्त : (लम्बी सांस लेकर) मेरी मानसिक स्थिति की कल्पना, प्रयत्न करने पर भी, आप नहीं कर सकते, राजपुत्र ! कुटुम्बी जनों से किसी प्रकार का सम्बन्ध न रख, सदा आपकी मंगलकामना में दत्तचित रहते हुए भी जब मैं अपने प्रति सन्देह देखता हूँ तब...

शिलादित्य : (फिर बीच ही में) परन्तु, मेरे हृदय में तो तुम्हारे प्रति कोई सन्देह नहीं है न ? मेरा हृदय तो तुम्हारे शुद्ध प्रेम से ओतप्रोत है न ?

माधवगुप्त : यदि आपके हृदय में भी मेरे प्रति सन्देह रहता, यदि आपका भी मेरे प्रति सच्चा प्रेम न होता तो स्थाण्वीश्वर के इस वायुमण्डल में क्या मैं एक क्षण भी निवास कर सकता था। राजपुत्र, क्या कहूँ ? आपके प्रेम ने मुझे इस प्रकार बाँध रखा है कि मेरे ज्येष्ठ भ्राता मालवेश देवगुप्त का महाराजाधिराज राज्यवर्द्धन के वध करने और उन्हीं के कारण बन्धु कुमारगुप्त का वध होने पर भी मैं आपका सहवास न छोड़ सका। शशांक का बन्धुत्व इस स्नेहरूपी हिमालय के सम्मुख रजकण के तुल्य भी नहीं है, राजपुत्र।

[शिलादित्य उठकर माधवगुप्त को हृदय से लगा लेता है। कुछ देर तक निस्तब्धता रहती है। फिर दोनों अपनी-अपनी आसन्दी पर

बैठ जाते हैं ।]

शिलादित्य : अच्छा, अब काम की थोड़ी बात हो जाय । तुम जानते हो कि तुमने जो सम्मति इस समय मुझे दी है उससे मेरी दशा कैसी हो गयी है ?

माधवगुप्त : कैसी, राजपुत्र ?

शिलादित्य : उस पथिक के सदृश जो अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने के लिए एक पथ से विदा हो चुका हो और बीच में कोई विश्वास-पात्र जन आकर उससे यह कह दे कि वह एक अन्य पथ से अपने निर्दिष्ट स्थान पर अधिक शीघ्रता और सुविधा से पहुँच सकता है ।

माधवगुप्त : यदि उस पथिक को यह बात सचमुच ही उसका कोई विश्वासपत्र जन कहता है, तथा कहने वाले के कथन से उस पथिक को भी यदि अपने पथ में सन्देह उत्पन्न हो जाता है, तो जितने शीघ्र वह पथिक अपना पथ परिवर्तित करदे, उतना ही उत्तम है ।

शिलादित्य : (कुछ ठहर कर मुस्कराते हुए) क्यों माधव, तुम्हें यह विश्वास है कि मैं जिस पथ पर चल रहा हूँ उसकी अपेक्षा अब अन्य पथ मुझे अपने निर्दिष्ट स्थान पर अधिक शीघ्रता और सुविधा से ले जायगा ?

माधवगुप्त : यदि मुझे यह निश्चय न होता, आर्य ! तो मैं आपको अपनी सम्मति इतने स्पष्ट शब्दों में न देता; आज तक क्या कभी मैंने इस प्रकार का दुस्साहस किया है ?

शिलादित्य : मानता हूँ, कभी नहीं । माधव, तुम्हारी अवस्था की अपेक्षा तुम्हारा ज्ञान कहीं आगे बढ़ा हुआ है, इसे प्रौढ़ जन भी स्वीकार करते हैं ।

माधवगुप्त : यह आपकी और प्रौढ़ जनों की कृपा है ।

शिलादित्य : (कुछ ठहरकर विचार करते हुए) तो तुम्हारा स्पष्ट और निश्चित मत है कि इस समय मेरा राज्य ग्रहण न करना कर्त्तव्य से च्युत होना है ?

माधवगुप्त : सर्वथा स्पष्ट और निश्चित । देखिए राजपुत्र, धर्म और कर्त्तव्य-पथ से चलकर ही जीवन व्यतीत करना, आपने अपना

लक्ष्य बनाया है। अब तक आपके राज्य ग्रहण न करने के निश्चय को मैं सदा और भी दृढ़ करने का उद्योग इसलिए करता रहा कि आपके अग्रज थे। मैं नहीं चाहता था कि इन दिनों जिस प्रकार अन्य अनेक राजाओं में राज्य के लिए सहोदर भ्राताओं के बीच कलह हो जाता है वैसा स्थाण्वीश्वर में भी हो। आपके अग्रज सिंहासनासीन रह, सारे भारत को एक साम्राज्य के अन्तर्गत लाने का यत्न करते और आप उनके इस महान् कार्य में सहायता कर उनकी छत्रच्छाया में प्रजा की सेवा में दत्तचित्त रहते; परन्तु आज तो राज्य की नींव ही हिल रही है। महाराजाधिराज राज्यवर्द्धन के हत्यारे, चाहे वे मेरे आत्मीय हो क्यों न हों, मैं तो उन्हें महाराजाधिराज का षड्यन्त्र से वध करने के कारण हत्यारा ही मानता हूँ, चक्रवर्ती सम्राट् होने की आकांक्षा कर रहे हैं और राजपुत्री राज्यश्री भी बन्धन में पड़ी हुई हैं। यदि ऐसे आततायियों को दण्ड न मिला तो फिर संसार का कार्य नियमित रूप से किस प्रकार चल सकेगा? वर्तमान परिस्थिति में, आपका वर्त्तमान जीवन कर्त्तव्य-पथ पर न चलकर इसके विपरीत पथ पर ही चल रहा है। (मैं आपके विरागपूर्ण जीवन को सदा श्रेष्ठ मानता रहा; क्योंकि मेरा निश्चय है कि मनुष्य को विषय-वासना के उपभोगों से सच्चा और स्थायी सुख मिलना असम्भव है। मैं आपकी स्वाभाविक परोपकार प्रवृत्ति को सदैव उत्तेजित करता रहा, कारण कि मेरा विश्वास है कि इस संसार में परोपकार के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु में सच्चा और स्थायी सुख मिल ही नहीं सकता।) आज भी मैं आपको अपने दो अन्तिम विचारों में कोई परिवर्तन करने के लिए नहीं कह रहा हूँ, केवल अपने प्रथम निर्णय को परिवर्तित करने का निवेदन करता हूँ।

शिलादित्य : परन्तु माधव, प्रथम निर्णय के परिवर्तित होते ही अन्तिम निर्णय तो अपने आप बदल जायेंगे।

माधवगुप्त : यह आवश्यक नहीं है। अनेक सम्राट तथा राजा राज्य करते हुए भी विरागी एवं परोपकार में दत्तचित्त रहते हैं। उन्होंने

राज्य को सदा अपने पास प्रजा की धरोहर और अपने को प्रजा का सेवक मानता है।

शिलादित्य : ऐसे दृष्टान्त बहुत कम हैं। अधिकांश नरेश या तो विषयों में अनुरक्त रहे हैं या अपनी शक्ति और साम्राज्य बढ़ाने के लिए रक्तपात में दत्तचित्त।

माधवगुप्त : नहीं आर्य, भारतीय सम्राटों तथा राजाओं का यह आदर्श कभी नहीं रहा। विषय-लोलुप सम्राट् एवं राजाओं का चाहे अन्य देशों में उत्कर्ष हुआ हो, मिश्र के फरोह और रोम के सीज़र आदि विषय-लोलुप रहते हुए भी चाहे उन्नत हो सके हों; परन्तु भारत के इतिहास में आपको ऐसे एक भी सम्राट् या राजा का उदाहरण न मिलेगा, जिसका विषय-लोलुप रहते हुए उत्थान हुआ हो। अत्यन्त प्राचीन काल के भारतीय सम्राट् रघु, राम, युधिष्ठिर आदि अथवा आधुनिक काल के चन्द्रगुप्त, अशोक, कनिष्क, समुद्रगुप्त इत्यादि किसी के जीवन की ओर आप देखें, इनमें से एक भी विषय-लोलुप न था। हाँ, रक्तपात इस देश के भी अनेक सम्राटों द्वारा हुआ है; पर वह अधिकतर या तो आततायियों को दण्ड देने के लिए अथवा समस्त देश में सभ्यता और संस्कृति का एकीकरण रखने के उद्देश्य से; किसी के राज्य का अपहरण करने के निमित्त नहीं। आततायियों को दण्ड देकर उनका राज्य उन्हीं के निकटवर्ती सम्बन्धियों को दे दिया जाता था। किष्किन्धा और लंका में राम ने यही किया था। इसी प्रकार जो चक्रवर्ती होकर समस्त देश में एक सभ्यता और संस्कृति स्थित रखने के लिए अश्वमेध या राजसूय यज्ञ करना चाहते थे वे भी उनसे युद्ध करने वालों के पुत्रादिकों को ही उनके राज्य सौंप देते थे। पाण्डवों ने मगध के जरासन्ध से युद्ध कर उसके पुत्र सहदेव को ही तो मगध का सिंहासन दिया था। यज्ञों के बन्द होने के पश्चात् भी चक्रवर्ती सम्राटों की यही पद्धति रही। उन्होंने किसी के राज्य का अपहरण न कर सबको माण्डलिक ही बनाया।

शिलादित्य : फिर भी तुम यह नहीं कह सकते कि सभी सम्राट् और

राजा विषयोपभोगों और अपनी सत्ता-वृद्धि के लिए रक्तपात के दोषों से मुक्त रहे हैं। अतः क्या यह सबसे अच्छी बात न होगी कि इस समय पुनः प्राचीन भारत के लिच्छिवि, वज्जिक और मद्रक आदि राज्यों के समान प्रजातन्त्र शासन-प्रणाली को स्थापित करने का प्रयत्न किया जाय ?

माधवगुप्त : प्रजा को अब इस प्रणाली का अभ्यास नहीं रह गया है; और इस समय, जबकि चारों ओर शत्रु प्रबल हो रहे हैं तब, इस प्रकार के कार्य का समय नहीं है। ऐसे अवसरों पर तो एक ही व्यक्ति के अधिकार में सत्ता का रहना आवश्यक है, फिर प्रजा-तन्त्र शासन-प्रणाली ही सर्वश्रेष्ठ है, इसका प्रमाण नहीं।

शिलादित्य : यह कैसे ?

माधवगुप्त : यदि यही प्रणाली सर्वश्रेष्ठ होती तो इसके विकास के अनन्तर फिर सत्ता एक मनुष्य के अधिकार में क्यों जाती ? भारत में लिच्छिवि, वज्जिक, मद्रक आदि राज्यों में प्रजातन्त्र के पश्चात् भी राजाओं के हाथ में सत्ता गयी। यही बात हमें यवनक और रोमक आदि देशों के इतिहास से ज्ञात होती है। बात यह है राजपुत्र, कि संसार में हर एक वस्तु पूर्ण न होने, वरन् परि-वर्तनशील होने के कारण इन शासन-प्रणालियों में भी परिवर्तन होता रहता है। एक बात सदा निर्दोष रह ही नहीं सकती। बहुत काल तक एक मनुष्य के अथवा अनेक मनुष्यों के हाथ में सत्ता रहते-रहते दोनों ही प्रकार की पद्धतियों में अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं। जनसमुदाय जब एक मनुष्य के हाथ की सत्ता से कष्ट पाने लगता है तब प्रजातन्त्र की स्थापना और जब अनेक मनुष्यों के हाथ की सत्ता से कष्ट पाने लगता है तब एक मनुष्य के हाथ में सत्ता देने का प्रयत्न करता है। **(कुछ ठहरकर)** मुझे विश्वास है राजपुत्र, कि यदि आपने राजसिंहासन ग्रहण किया तो भी आप कभी विषय-वासनाओं के आखेट न होंगे, न कभी आपके हाथों व्यर्थ का रक्तपात ही होगा, वरन् सदा सच्चे धर्म और कर्त्तव्य-पथ पर चलकर ही आप अपना जीवन व्यतीत कर

सकेंगे। आप तो इस काल के विदेह हो सकते हैं, राजपुत्र !

शिलादित्य : **(कुछ विचारते हुए)** यह तुम निश्चयपूर्वक कैसे कह सकते हो ?

माधवगुप्त : आपकी अब तक की मानसिक अवस्था के ज्ञान के कारण।

शिलादित्य : परन्तु तुम्हीं ने अभी कहा कि संसार में हर वस्तु परिवर्तनशील है; परिवर्तन पर परिवर्तन होते हैं। आज मनुष्य एक बार विचार कर उसे उत्तम समझ उसके अनुसार व्यवहार करने का निश्चय करता है, कल उसी की उत्तमता में उसे सन्देह उत्पन्न हो जाता है और वह अपने निश्चय को परिवर्तित कर देता है। आज मुझे ही अपने सिंहासन ग्रहण न करने के निश्चय की उत्तमता में सन्देह उत्पन्न हो गया है। कल अन्य निश्चय भी नहीं बदल जायँगे, यह कैसे कहा जा सकता है ?

माधवगुप्त : परिस्थिति के अनुसार निश्चयों को बदलना ही बुद्धिमत्ता है आर्य; किन्तु हाँ, यदि मनुष्य जीवन-शकट के दो चक्रों को न बदले तो अन्य निश्चयों के परिवर्तन से भी उसका जीवन-शकट कभी सच्चे पथ से भ्रष्ट नहीं हो सकता।

शिलादित्य : कौनसे चक्र, माधव ?

माधवगुप्त : जिन पर आप अपने जीवन को चला रहे हैं। व्यक्तिगत आधिभौतिक विलासों के उपभोग की लालसा से निवृत्ति और परोपकार की प्रवृत्ति।

शिलादित्य : किन्तु राज्य ग्रहण करने के पश्चात् यह निवृत्ति और यह प्रवृति कहाँ तक स्थिर रह सकेगी ?

माधवगुप्त : मैंने कहा न आर्य, कि यह अनेक सम्राटों तथा राजाओं में रही है।

शिलादित्य : और मैं भी उन्हीं में एक होऊँगा, इसका तुम्हारे पास क्या प्रमाण है ?

माधवगुप्त : **(मुस्कराकर)** मेरे पास तो आपकी अब तक की मानसिक अवस्था का प्रमाण है; किन्तु आप वैसे न होंगे, इसका आपके

पास क्या प्रमाण है ? फिर, राजपुत्र आप तो अकेले नहीं हैं। चाहे किसी का मुझ पर अविश्वास भी हो, पर आपका मुझ पर पूर्ण विश्वास है। हम दोनों एक-दूसरे को पथ-भ्रष्ट न होने देने में क्या सहायक न होंगे !

[प्रतिहारी का प्रवेश। वह ऊँचा-पूरा साँवले रंग का वृद्ध मनुष्य है। सिर पर लम्बे बाल तथा मुख पर बड़ी-बड़ी मूँछें और दाढ़ी हैं। सब केश श्वेत हो गये हैं। गले से पैर तक, नीचा श्वेत रंग का कंचुक (एक प्रकार का अँगरखा) पहने हुए है, और सिर पर श्वेत पाग बाँधे है। कमर में सुनहरी रंग का कमरपट्टा है, जिसमें खड्ग लटक रहा है। कुण्डल, हार, केयूर, वलय और मुद्रिकाएँ धारण किये है। सब भूषण सुवर्ण के हैं। दाहिने हाथ में एक मोटी सुवर्ण की छड़ी लिये है।]

प्रतिहारी : **(सिर को बहुत नीचे तक झुका, अभिवादन कर)** राजपुत्र की जय हो ! श्रीमान् महासन्धिविग्रहक महामात्य और महाबलाधिकृत श्रीमान् के दर्शन किया चाहते हैं।

शिलादित्य : **(अभिवादन का, कुछ सिर झुकाकर उत्तर देते तथा सोचते हुए)** उन्हें ले जाओ, प्रतिहारी !

[प्रतिहारी का अभिवादन कर प्रस्थान। पुनः अवन्ति और सिंहनाद के साथ प्रवेश तथा उन्हें पहुँचाकर पुनः अभिवादन कर प्रस्थान। दोनों शिलादित्य को मस्तक झुकाकर अभिवादन करते हैं। शिलादित्य भी सिर झुका अभिवादन का उत्तर देते हैं। माधवगुप्त खड़े होकर अवन्ति और सिंहासन का उसी प्रकार अभिवादन करता है। दोनों माधवगुप्त के अभिवादन का भी सिर झुकाकर उत्तर देते हैं।]

शिलादित्य : आइए, बैठिए, महामात्य और महाबलाधिकृत !

[दोनों दो आसन्दियों पर बैठ जाते हैं।]

अवन्ति : राजसभा की आज की बैठक का निर्णय सुनाने के लिए हम लोग सेवा में उपस्थित हुए हैं।

माधवगुप्त : (खड़े-खड़े ही) यदि कोई गुप्त बात हो तो मैं आज्ञा लेता हूँ, राजपुत्र !

शिलादित्य : नहीं-नहीं, तुम से गुप्त बात रह ही नहीं सकती, माधव, तुम भी बैठो !

[**माधवगुप्त भी एक आसन्दी पर बैठ जाता है ।**]

शिलादित्य : कहिए महामात्य, क्या निर्णय हुआ है ?

अवन्ति : (**कुछ ठहरकर खखारते हुए**) श्रीमन्, हम दोनों तथा राजसभा के अन्य सदस्य आपके पिता परमभट्टारक महाराजाधिराज के समय से अपने-अपने वर्तमान पदों पर नियुक्त हैं। अब तक इस वंश और राज्य की हम लोगों ने अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार सेवा करने का प्रयत्न किया है, किन्तु हम लोग देखते हैं कि अब हम लोगों से यह सेवा न हो सकेगी···!

[**अवन्ति चुप होकर सिर झुका लेता है ।**]

शिलादित्य : यह क्यों ?

सिंहनाद : यह इसलिए राजपुत्र, कि देश की वर्त्तमान परिस्थिति में बिना राजा के कार्य चलना असम्भव है। राज्य पर चारों ओर से आपत्ति के मेघ मँडरा रहे हैं और श्रीमान् सिंहासनासीन होना अस्वीकार करते हैं। इसलिए राजसभा के समस्त सदस्यों ने निश्चय किया है कि वे भी अपने-अपने पदों को त्याग देवें।

[**सिंहासन भी चुप हो जाता है । शिलादित्य विचारमग्न हो जाता है । कुछ समय के लिए निस्तब्धता छा जाती है ।**]

शिलादित्य : (**धीरे-धीरे कुछ अटक-अटककर**) महामात्य और महाबलाधिकृत, पूज्यपाद राज्यवर्द्धन के निधन के पश्चात् और चिरंजीवी राज्यश्री के बन्धन से मुक्ति की सूचना न पाने के कारण उसी समय से यह प्रश्न मेरे सम्मुख है। (**कुछ ठहरकर**) अभी आप लोगों के आने के पूर्व (**माधवगुप्त की ओर संकेत कर**) इनसे मेरा इसी विषय पर वाद-विवाद चल रहा था। यद्यपि आपके आने के पूर्व मैं इस विषय में कोई निश्चयात्मक निर्णय न कर सका था, परन्तु (**लम्बी साँस लेकर**) अब मैंने निर्णय कर लिया है।

अवन्ति : (**उत्सुकता से**) वह क्या है, राजपुत्र ?

सिंहनाद : मैं आशा करता हूँ, श्रीमान् ने शुभ निर्णय ही किया होगा।

शिलादित्य : (रूखी मुस्कराहट के साथ) शुभ निर्णय है या अशुभ, यह तो मै ठीक नहीं कह सकता; परन्तु वह आप लोगों की रुचि के अनुकूल है, इतना मैं जानता हूँ। मैं अब राज्य ग्रहण करने के लिए तैयार हूँ।

माधवगुप्त : (मुस्कराते हुए) और प्रणाली के अनुसार राजपुत्र हर्ष-वर्द्धन का नाम धारण कर सिंहासनासीन होवेंगे।

अवन्ति : (प्रसन्न होकर) धन्य हमारा भाग्य !

सिंहनाद : (उत्साह से) धन्य राज्य का सौभाग्य !

[कुछ देर को निस्तब्धता छा जाती है। शिलादित्य विचारमग्न हो जाता है।]

शिलादित्य : (कुछ सोचते हुए) महामात्य और महाबलाधिकृत, राज्य ग्रहण करना तो मैंने स्वीकृत कर लिया, पर, फिर भी मैं दो बातें न करूँगा।

अवन्ति : वे क्या, राजपुत्र ?

सिंहनाद : उन्हें और बता दीजिए।

शिलादित्य : पहली बात विवाह और दूसरी व्यर्थ का युद्ध।

अवन्ति : (कुछ विचार करते हुए) दूसरी बात तो ठीक है। व्यर्थ का रक्तपात हो, यह कोई नहीं चाहता; परन्तु विवाह आप क्यों न करेंगे ?

सिंहनाद : (आश्चर्य से) हाँ, विवाह करने में क्या हानि है ?

शिलादित्य : मैं अपने को राज्य का संरक्षकमात्र मानना चाहता हूँ और राज्य को अपने पास प्रजा की धरोहर। मैं अपने और अपने वंश को राज्य का स्वामी और राज्य को अपनी सम्पत्ति नहीं मानना चाहता।

सिंहनाद : विवाह करने के पश्चात् भी आप यही मान सकते हैं।

शिलादित्य : नहीं, राज्य-सिंहासन पर बैठने के पश्चात् एक तो यों ही इस भावना की रक्षा कठिनाई से हो सकती है; फिर पुत्र-पौत्रादि हो तब तो इस भावना का चित्त में ठहरना और भी

कठिन हो जाता है। पुत्र-पौत्रादि यदि अयोग्य हों तो भी राज-सत्ता उन्हीं के अधिकार में रहे, इस लोभ की उत्पत्ति होती है।

अवन्ति : परन्तु, श्रीमान्, आपने विवाह न किया तो आपके पश्चात् राज्य का अधिकारी कौन होगा ?

शिलादित्य : इसका निर्णय उस समय हो जायेगा।

सिंहनाद : किन्तु श्रीमान्, योग्य सन्तान के होने पर तो एक प्रकार से आप अपने पश्चात् के लिए भी सुशासन की व्यवस्था कर जायँगे।

शिलादित्य : और यदि अयोग्य सन्तान हुई तो, महाबलाधिकृत, अयोग्य सन्तान होने पर भी राजसत्ता उसी के अधिकार में रहे, इस आसक्ति की उत्पत्ति हो जायगी। देखिए, महामात्य और महाबलाधिकृत, राज-सत्ता सदैव एक ही वंश के अधिकार में, उस वंश में सन्तान के रहते हुए भी, नहीं रही है। किसी वंश में, अयोग्य के उत्पन्न होते ही, वह उस वंश के अधिकार के बाहर चली गयी है। फिर मैं ही अपने हृदय में आसक्ति की उत्पत्ति कर, जो थोड़ी-बहुत प्रजा की सेवा करना चाहता हूँ, उस भावना के नाश का आयोजन क्यों कर लूँ ? मैं तो प्राचीन भारत की प्रजातन्त्र राज्य-प्रणाली का पक्षपाती हूँ; परन्तु यदि यह वर्त्तमान परिस्थिति में सम्भव नहीं है तो सिंहासनासीन होकर राज्य-संरक्षक के रूप में प्रजा-सेवा के लिए तैयार हूँ। पर विवाह कर, मैं अपने हृदय में राज्य के लिए आसक्ति की उत्पत्ति नहीं करना चाहता। **(खड़े होते हुए)** मैं सिंहासन-ग्रहण करूँगा; परन्तु विवाह नहीं, कदापि नहीं !

[परदा गिरता है।]

तीसरा दृश्य

स्थान : एक जंगली मार्ग

समय : सन्ध्या

[राज्यश्री का प्रवेश। उसकी अवस्था लगभग १५ वर्ष की है, किन्तु अवस्था से उसका वय अधिक जान पड़ती है। वह गौर वर्ण की सुन्दर युवती है, परन्तु इस समय उसका शरीर क्षीण है और मुख अत्यधिक उतरा हुआ है। उस पर शोक-सहित उन्माद का साम्राज्य दृष्टिगोचर होता है। शरीर पर श्वेत सूती साड़ी है और उसी प्रकार का वस्त्र वक्षःस्थल पर बँधा हुआ है, साड़ी अस्त-व्यस्त सी है। सिर के बाल अव्यवस्थित रूप से फैले हुए हैं और सारा शरीर आभूषणों से रहित है। वह गा रही है।]

रेशम-डोरी में मुक्ता-हार !

(बार-बार उपर्युक्त चरण गाते हुए और टहलते हुए बिना हार के ही अँगूठे को अँगुलियों पर फेरती तथा हाथों को देखती है, मानो हाथों में हार हो। एकाएक खड़ी होकर बैठ जाती और गाती है।)

चुन-चुन मोती, अहो ! पिरोये, मैंने पानीदार।

(बिना मोतियों के ही मोती चुनने और पिरोने का अभिनय करती तथा बार-बार उपर्युक्त चरण गाती है। फिर एकाएक अभिनय और गाना बन्द कर खड़ी होकर सामने की ओर देखने और सिर हिलाने तथा पुनः गाने लगती है।)

लेकर गयी उसे पहनाने जब प्रियतम के पास—

(टहलते तथा सिर हिलाते हुए)

मिले न वे हा ! मेरे मन का, मिटा सभी उल्लास।

(एकाएक खड़े होकर दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बाँध सामने देखते हुए)

आकर उसी समय सजनी ने एक सुनायी बात।

(मुट्ठियाँ खोलकर हाथों को शीघ्रतापूर्वक नीचे से ऊपर की ओर हिलाते तथा पुनः शीघ्रतापूर्वक टहलते हुए)

लगी हृदय में अनल जिसे सुन, दग्ध हुआ सब गात।

(फिर एकाएक रुककर आँखें फाड़-फाड़ हाथों को देखते हुए)

इन हाथों में हार लिये थी, तप्त हुए इस भाँति।
रेशम-डोरी दग्ध हुई, झट चटकी मुक्ता-पाँति।

(एकाएक बैठकर गाना बन्द करते हुए सिर घुमा, चारों ओर देखती और लम्बी साँस लेकर पुनः गाने लगती है)

हृदयानल से मोती चटके, कौन सकेगा मान !
पर, मेरे मुक्ता ही ऐसे, नहीं सकेगा जान।

(डूबते हुए सूर्य की सुनहरी किरणों का प्रकाश फैल जाता है। गाना बन्द कर आँखें फाड़-फाड़कर सामने की ओर देखती हुई एकाएक खड़े होकर)

हैं ! हैं ! अनल ! अनल ! वही अनल किस प्रकार फैल गयी है ! इतनी भीषण अनल ! **(सामने की ओर देखकर)** सामने अनल ! **(पीछे देखकर)** पीछे भी अनल ! **(दाहिनी ओर देखकर)** इस ओर भी अनल ! **(बाँईं ओर देखकर)** इस ओर भी अनल ! **(नीचे देखकर)** यहाँ भी अनल ! **(ऊपर देखकर)** वहाँ भी अनल है। चारों ओर अनल ! नीचे अनल ! ऊपर अनल ! कहाँ जाऊँ ? कहाँ जाऊँ ? जली जाती हूँ, झुलसी जाती हूँ ! **(एकाएक बैठते हुए)** भस्म की ढेरी होने पर ही शान्ति मिलेगी। **(फिर रुककर सामने की ओर देखकर एकाएक खड़ी होकर और चारों ओर तथा ऊपर-नीचे देखकर)** दसों दिशाएँ जल रही हैं। आह ! कैसी भीषण ज्वालाएँ हैं और धूम तक नहीं ! ज्वालाएँ ही ज्वालाएँ ! **(कुछ ठहरकर पीछे के वन-वृक्षों को देख अँगुली से दिखाते हुए जल्दी-जल्दी)** यह देख, यह देख, सखि अलका, वन किस प्रकार जल रहा है ! अरे-रे ! हरे-हरे वृक्ष शुष्क काष्ठ के समान जल रहे हैं! कैसे लाल-लाल अंगारे हैं, कैसे लाल-लाल ! **(कुछ ठहरकर)** इन वृक्षों से भी धूम नहीं निकलता ! अंगारे ही होते

हैं; पर भस्म नहीं ! (**कुछ ठहरकर**) जली, जली ! दग्ध हुई ! मरी ! (**एकाएक पृथ्वी पर गिरकर मूर्च्छित हो जाती है। कुछ देर तक निस्तब्धता रहती है। फिर पड़े-पड़े आँखें मूँदे हुए ही**) आ गये, आ गये ! नाथ, देखो तो, तुम्हारे आते ही सारी अनल किस प्रकार बुझ गयी, मानो इस पर मूसलाधार वृष्टि हुई है ! (**कुछ ठहरकर**) आह ! मेरे दग्ध शरीर पर हाथ फेर रहे हो ! कितना शीतल हाथ है प्रियतम ! हिम उनके सम्मुख कौनसी वस्तु है ! (**कुछ ठहरकर**) वही तो हाथ है न, जिसका सर्वप्रथम पाणिग्रहण के समय स्पर्श हुआ था। वही तो हाथ हैं न, जिसने सुहागरात्रि के दिन आलिंगन किया था ! वही तो हाथ है न, जिसने न जाने कितने गजरे गूँथ-गूँथकर, गले में पहनाये थे ! वही हाथ है न, जिसने न जाने कितने ताम्बूल मुख में खिलाये थे ! वही तो हाथ है न, जो ग्रीष्म में जल-विहार के समय जल को उछाल-उछालकर नेत्र मीलित कर देता था ! वही तो हाथ है न, जो वर्षा में झूले पर हाथ पकड़कर चढ़ता था ! वही तो हाथ है न, जो वसन्त के होलिकोत्सव में मुख पर गुलाल और अबीर मल देता था। (**कुछ ठहरकर**) पकड़े रहूँगी, पकड़े रहूँगी, प्राणेश, आठों पहर और चौंसठ घड़ी पकड़े रहूँगी। अब कभी क्षणमात्र को भी हाथ न छोड़ूँगी। देखूँ, फिर तुम कैसे और कहाँ भागते हो ? (**एकाएक चौंककर उठ बैठती और चकित-सी इधर-उधर देखने लगती है।**) हैं, चले गये ! कहाँ ? चले गये, हृदयनिधि कहाँ चले गये ? (**फूट-फूटकर रोने लगती है।**) हाय ! हाय ! इतनी निष्ठुरता ! (**कुछ ठहरकर हिचकियाँ लेते हुए**) इतनी वज्र-हृदयता ! (**चुप होकर फिर एकाएक खड़ी हो जाती है।**) देख तो, सखि अलका, तू उनसे जाकर कह। (**फिर गाने लगती है और इस प्रकार गाती है मानो वह गायन किसी को सुनाकर गा रही है।**)

भीनी-भीनी मधुर गन्धयुत, चटकीं-चटकीं कुछ कलियाँ
झटक-झटक तोड़ीं निज तरु से, सुन्दर गूँथीं गलबहियाँ।

(**हाथ को बराबर, हृदय के निकट ले जाकर तोड़ने का अभिनय करते हुए गाना बन्द कर**) उन्हें शीघ्र ही ला, अलका ! (**फिर गाती**

है । **बिना माला के ही हाथों को आगे कर, दिखाती हुई मानो हाथों में माला लिये हुए हो ।)**

ला तू प्राणाधिक को द्रुत ला, पहनाऊँ ये गलबहियाँ,
यदि विलम्ब कर देंगे वे तो सूख जायँगी ये कलियाँ ।

(**फिर गाना बन्द कर उसी प्रकार हाथों को आगे किये हुए**) नहीं, नहीं, ठहर जा. अलका, मैं ही वहाँ चलती हूँ । कदाचित् उनके आने में विलम्ब हो जाय ।

[शीघ्रता से प्रस्थान । परदा गिरता है ।]

चौथा दृश्य

स्थान : गंगा-तट पर हर्ष का शिविर

समय : तीसरा पहर

[गंगा बह रही है, उसका श्वेत नीर सूर्य की किरणों से चमक रहा है। किनारे पर सघन वृक्ष हैं और वृक्षों के नीचे दूर-दूर तक सैनिकों के ठहरने की तृण-निर्मित झोंपड़ियाँ दिखायी देती हैं। गंगा के किनारे वृक्षों की छाया में कुछ काष्ठ की आसन्दियाँ रखी हुई हैं। दो पर हर्षवर्द्धन और माधवगुप्त बैठे हुए हैं। दोनों ही शरीर पर लोह-कवच धारण किये हुए हैं, जिनमें सुवर्ण भी लगा है। दोनों आयुधों से सुसज्जित हैं। बाँयें कंधे पर धनुष, पीठ पर तरकस और कमर में खड्ग है। हाथों में गोधांगुलिस्त्राण (गोह के चमड़े के बने हुए एक प्रकार के दस्ताने) और पैरों में चर्म के जूते हैं। सिर खुला हुआ है।)

हर्ष : राज्य ग्रहण करते विलम्ब न हुआ माधव, और सारा समय उद्विग्नता में व्यतीत होने लगा !

माधवगुप्त : इसका कारण है, परमभट्टारक !

हर्ष : क्या ?

माधवगुप्त : इस समय की असाधारणता ! जब तक महाराजाधिराज राज्यबर्द्धन के वधिक को उचित दण्ड न मिल जायेगा और राज-पुत्री राज्यश्री की बन्धन-मुक्ति न हो जायेगी तब तक उद्विग्नता का अन्त न होगा।

हर्ष : **(कुछ ठहरकर)** क्यों, माधव, कामरूप के कुमारराज भास्कर-वर्मन का इस समय आकर मित्रता करने के सम्बन्ध में तुम्हारा क्या मत है ?

माधवगुप्त : **(कुछ सोचते हुए)** कुमारराज बड़े सज्जन व्यक्ति ज्ञात होते हैं, परमभट्टारक ! यदि इस देश के अन्य नरपतिगण भी

आप से इस प्रकार मित्रता कर लें तो जिस रक्तपात से आप घृणा करते हैं, उससे दूर रहकर भी आप चक्रवर्त्ती सम्राट् हो जायँगे।

हर्ष : और इस साम्राज्य का कोई भी माण्डलिक राजा अपने को राज्य का स्वामी न मानकर संरक्षक-मात्र मानेगा, तथा प्रजा की सेवा में ही आठों पहर और चौंसठ घड़ी दत्तचित्त रहेगा।

माधवगुप्त : इस सम्बन्ध में अभी कुछ नहीं कह सकता।

हर्ष : यह क्यों ?

माधवगुप्त : इसलिए परमभट्टारक, कि सब आपके समान निःस्वार्थी नहीं हैं।

हर्ष : और कुमारराज ने मेरे प्रति जो प्रेम दर्शाया है, उस सम्बन्ध में तुम्हारी क्या सम्मति है ?

माधवगुप्त : **(विचार करते हुए)** वे आपसे किसी प्रकार का छल न करेंगे, इतना तो अवश्य जान पड़ता है; परन्तु इस मित्रता में कितनी निस्स्वार्थता है, यह मैं अभी नहीं कह सकता।

हर्ष : यह किस प्रकार ?

माधवगुप्त : आपने कदाचित् नहीं सुना कि कामरूप देश का सिंहासन किसे मिले, यह विवाद उस देश में छिड़ा हुआ है।

हर्ष : अच्छा, मुझे यह ज्ञात नहीं था।

माधवगुप्त : मैंने भी आज ही कुमारराज के आगमन के पश्चात् इसका पता पाया है।

हर्ष : **(मुस्कराकर)** तो कुमारराज को आते देर न हुई और तुमने उनके आगमन के उद्देश्य का पता लगा लिया।

माधवगुप्त : आपके साथ आँखें मूँदकर तो नहीं रहा जा सकता, महाराज !

[प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी : **(अभिवादन कर)** जय हो ! महाराजाधिराज, बलाधिकृत भण्डि आये हैं और परमभट्टारक के दर्शन किया चाहते हैं।

हर्ष : **(प्रसन्न होकर)** अच्छा, बलाधिकृत आ गये; उन्हें शीघ्र से शीघ्र उपस्थित करो !

[प्रतिहारी का अभिवादन कर पुनः प्रस्थान]

हर्ष : यह बड़ा शुभ संवाद है, माधव !

माधवगुप्त : इसमें सन्देह नहीं, महाराज !

हर्ष : कान्यकुब्ज में क्या हुआ, अब इसका विश्वसनीय पता मिल जायगा; राज्यश्री के भी समाचार मिलेंगे ।

[हर्ष उठकर इधर-उधर टहलने लगते हैं । माधवगुप्त भी साथ में टहलता है । प्रतिहारी के संग भण्डि का प्रवेश । प्रतिहारी भण्डि को छोड़कर अभिवादन कर चला जाता है । भण्डि युवा-अवस्था का ऊँचा-पूरा गेहुँए रंग का सुन्दर व्यक्ति है । छोटी-छोटी मूँछें हैं । हर्ष और माधवगुप्त के सदृश सैनिक वेश में है, परन्तु उसका सिर खुला हुआ नहीं है । सिर पर वह लोहे का सुवर्ण लगा हुआ शिरस्त्राण धारण किये हुए है, जिस पर सुनहरी कलगी लगी है ।]

भण्डि : (आगे बढ़कर खड्ग निकाल मस्तक पर लगाते हुए) स्थाण्वीश्वर का यह बलाधिकृत, परमभट्टारक महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन को अभिवादन करता है !

हर्ष : (अभिवादन का, सिर झुकाकर उत्तर दे, आगे बढ़कर हृदय से लगाते हुए) बन्धु भण्डि, न जाने तुम्हें कितने काल के पश्चात् देखा है । कहो कुशलपूर्वक तो हो ? आह, इतने समय में तो न जाने क्या-क्या हो गया ? कहो, बन्धु, राज्यश्री का क्या संवाद है ?

भण्डि : विराजिए, परमभट्टारक, सब-कुछ बताता हूँ ।

[भण्डि और माधवगुप्त भी एक-दूसरे को हृदय से लगाते हैं । तीनों आसन्दियों पर बैठ जाते हैं ।]

भण्डि : महाराज, सर्वप्रथम तो सिंहासनासीन होने के लिए मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिए !

हर्ष : मैं तो सिंहासन ग्रहण करना ही न चाहता था, भण्डि, परन्तु परिस्थिति ने विवश कर दिया ।

भण्डि : वर्तमान परिस्थिति में इसके अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता था, महाराज ! **(कुछ रुककर)** अच्छा, अब राजपुत्री का

संवाद सुनिए।

हर्ष : हाँ, उसी के लिए मैं अत्यन्त आतुर हूँ।

भण्डि : आतुरता सर्वथा स्वाभाविक है, परमभट्टारक ! वे अब बन्धन में नहीं हैं।

हर्ष : (**कुछ सन्तोष से**) कान्यकुब्ज में ही हैं ?

भण्डि : नहीं।

हर्ष : (**आश्चर्य से**) फिर ?

भण्डि : उनका अब तक ठीक पता नहीं लगा है महाराज ! उन्हें कारागृह के दण्डपाशिक ने मुक्त कर दिया था और इतना ही सुना जाता है कि वे विन्ध्या की ओर चली गयी हैं।

हर्ष : (**कुछ सोचते हुए**) तब तो संवाद और भी भयानक है, बन्धु; कदाचित् शोकवश उसने आत्म-हत्या न कर ली हो।

भण्डि : अशुभ बात न विचारना ही अच्छा है, महाराज। उनको विन्ध्या में खोज करनी होगी।

[**कुछ देर निस्तब्धता रहती है।**]

हर्ष : (**कुछ सोचते हुए**) और कान्यकुब्ज की क्या अवस्था है ?

भण्डि : कान्यकुब्ज से अब शशांक हट गया है।

हर्ष : तो वह कर्णसुवर्ण चला गया है ?

भण्डि : हाँ, उसी ओर गया है।

[**कुछ देर निस्तब्धता रहती है।**]

हर्ष : (**कुछ विचारते हुए**) अच्छा, भण्डि, देखो मैं थोड़ी सी सेना लेकर राजपुत्री की खोज के लिए तत्काल विन्ध्या की ओर प्रस्थान करना चाहता हूँ, और तुम मेरी शेष सेना लेकर गौड़ पर आक्रमण करो। शशांक को महाराजाधिराज की हत्या का दण्ड तो देना ही होगा।

भण्डि : निस्सन्देह परमभट्टारक ! अन्यथा संसार में आततायी ही आततायी न हो जायँगे।

हर्ष : (**विचारते हुए**) तुम इस योजना को कैसी समझते हो ?

भण्डि : (**कुछ सोचकर**) ठीक तो जान पड़ती है, महाराज !

हर्ष : (माधवगुप्त से) और तुम, माधव ?

माधवगुप्त : (विचारपूर्वक) मुझे भी ठीक जान पड़ती है, परमभट्टारक !

हर्ष : और देखो, भण्डि, राजपुत्री का पता लगते ही मैं कर्णसुवर्ण की ओर प्रस्थान करूँगा।

भण्डि : उसके पूर्व ही आप शशांक को या तो बन्धनावृत सुन लेंगे अथवा उसे अपने सम्मुख बन्दी पावेंगे, महाराज !

हर्ष : (प्रसन्न होकर) वलाधिकृत भण्डि के मुख से ही इतने शीघ्र इस प्रकार के आशावादी वचन निकल सकते हैं !

भण्डि : यह आपकी कृपा है, महाराज, आपके हृदय में मेरे लिए ऐसा स्थान है।

हर्ष : अच्छा, बन्धु, इसमें अब विलम्ब न होना चाहिए। मैं तत्काल विन्ध्या की ओर प्रस्थान करता हूँ। राजपुत्री के सम्बन्ध में मेरे हृदय में भाँति-भाँति की शंकाएँ उठ रही हैं।

[हर्ष खड़े होते हैं। भण्डि और माधवगुप्त भी खड़े होते हैं।]

हर्ष : हाँ, जाने से पूर्व कुमारराज से विदा लेनी होगी।

[परदा गिरता है।]

पाचवाँ दृश्य

स्थान : एक वन-मार्ग

समय : सन्ध्या

[हर्ष, माधवगुप्त और हर्ष के कुछ सैनिकों का विन्ध्याटवी के राजा निर्गुहट तथा उनके सैनिकों के संग शीघ्रता से प्रवेश। हर्ष और माधवगुप्त की वही वेश-भूषा है जो चौथे दृश्य में थी, केवल वे मस्तकों पर शिरस्त्राण और लगाये हुए हैं। उनके सैनिकों की वेश-भूषा उन्हीं से मिलती हुई है, मुख्य अन्तर इतना ही है कि उनके शिरस्त्राणों पर कलगी नहीं है। निर्गुहट और उसके सैनिक कवच और शिरस्त्राण नहीं पहने हैं, परन्तु आयुध लिये हैं। उनके वस्त्र और आयुध साधारण कोटि के हैं। निर्गुहट के मस्तक पर मोरपंख की कलगी लगी हुई है। निर्गुहट और उसके सैनिक अत्यधिक श्याम वर्ण के हैं।]

हर्ष : (**निर्गुहट से**) विन्ध्याधिराज, बिना आप और आपके राज्य की सहायता के इस विन्ध्य-पर्वत-प्रदेश में राजपुत्री की खोज करना मेरे लिए असम्भव-सा था। मैं आपकी कृपा का सदा अनुग्रहीत रहूँगा।

निर्गुहट : मेरा राज्य और मेरे राज्य की सारी शक्ति हर कार्य के लिए आपके अधीन है, महाराज !

हर्ष : (**चारों ओर देखकर**) राजपुत्री इसी मार्ग से गयी हैं न ?

निर्गुहट : यही पता लगा था, महाराज; उस समय यह किसी को ज्ञात ही न था कि वे कौन हैं, अन्यथा आपको इतना कष्ट ही न करना पड़ता।

हर्ष . वे विक्षिप्त थीं निर्गुहटराज ?

निर्गुहट : विक्षिप्त तो नहीं, पर उन्हें एक प्रकार का उन्माद अवश्य था, यही संवाद मिला था, महाराज !

हर्ष : ओह ! मेरे हृदय में शंकाओं पर शंकाएँ उठ रही हैं। (**सामने की ओर देखकर**) इसी मार्ग से बढ़ा जाय न ?

निर्गुहट : हाँ, इसी मार्ग से, महाराज !

[सब का शीघ्रतापूर्वक प्रस्थान। परदा गिरता है।]

छठा दृश्य

स्थान : रेवा-तट

समय : प्रदोष

[सामने नर्मदा बह रही है। किनारे पर सघन वृक्ष हैं। यत्र-तत्र पर्वत के छोटे-छोटे शिखर दिखाई पड़ते हैं। अँधेरा होता जाता है। आकाश में षष्ठी का धनुषाकार चन्द्रमा तथा कोई-कोई तारे दिखायी देने लगे हैं। चन्द्र की किरणें नर्मदा में पड़ रही हैं, जिनसे उसका नीर चमक रहा है। कटी हुई लकड़ी के कुछ ठूंठ नर्मदा के तट पर पड़े हुए हैं। दो लकड़हारिनें कटी हुई लकड़ी का एक-एक गट्ठा बाँध रही हैं। दोनों केवल साड़ी पहने हुए हैं। दोनों गा रही हैं।]

धीरे बहु नदिया तैं धीरे बहु,
मोर पिया उतरइ दे पार। धीरे बहु०।
काहे की तेरी नइया रे,
काहे की करुवारि।
कहाँ तोरा नइया खेवइया,
के धन उतरईं पार। धीरे बहु०।
धरमै कइ मोरी नइया रे,
सत कइ लगी करुवारि।
सइयाँ मोरा नइया खेवइया रे,
हम धन उतरब पार। धीरे बहु०।

[गाते-गाते दोनों का कुछ लकड़ियों को छोड़, तथा दो गट्ठे लकड़ी सिर पर रखकर, दाहिनी ओर प्रस्थान। कुछ देर तक निस्तब्धता रहती है। कुछ देर के पश्चात् बांयीं ओर से गाते हुए राज्यश्री का प्रवेश। उसकी वेश-भूषा और मुद्रा अभी भी पहले के समान ही है।]

सोने की सुन्दर इक माला, निज निकेत से मैं लायी।

(हाथों में कुछ न रखते हुए भी हाथों को देखते हुए)

जड़ी हुई इसकी लख मणियाँ, मन ही मन मृदु मुस्कायी।

(कुछ मुस्कराती है और फिर चौंककर हाथ को ध्यानपूर्वक देखते हुए)

प्रियतम-निकट चली, पर यह तो गली, गली ही में माला।

(हाथ को नाक और मुख के निकट ले जाकर जोर-जोर से साँस ले, साँस की वायु का स्पर्श करते हुए)

मेरी साँसों से—क्या मैं हूँ चर्म-धौंकनी, येज वाला ?

(गायन बन्द कर पृथ्वी की ओर आश्चर्य से देखते हुए)

जड़ी हुई मणियाँ सब बिखरीं, मिलीं, धूल में गिर सारीं।

(फिर गायन बन्द कर पृथ्वी की ओर देखने का अभिनय करते हुए)

अहो ! बीनती, पर नहीं बिनतीं, दृष्टि, शक्ति दोनों हारीं।

(फूट-फूटकर रोने लगती है। कुछ देर में एकाएक चुपचाप खड़ी होकर चन्द्रमा की ओर देखते हुए)

श्वेत धनुष है, श्वेत ! **(जोर से)** अरी अलका ! ओ अलका ! देख तो इससे श्वेत ही शर छूट रहे है ! **(शीघ्रतापूर्वक इधर-उधर घूमते हुए पर्वत-शिखरों के निकट जाकर)** देख, यह देख, गिरि-शृंगों में लग रहे हैं ! **(वृक्षों के निकट जाकर)** देख, यह देख, वृक्षों में लग रहे हैं ! **(नर्मदा के निकट जाकर)** देख, यह देख, रेवा में लग रहे हैं ! **(दोनो हाथों से अपना हृदय सँभालते दीर्घ निःश्वास लेते और बैठते हुए)** और मेरे हृदय को विदीर्ण कर रहे हैं ! **(फिर कुछ चुप होने के पश्चात्)** अलका, उनके पास तो तीन धनुष थे न ? दो तो सदा नेत्रों के ऊपर ही रहते थे, वे तो श्वेत नहीं, श्याम थे, अलका। **(कुछ ठहरकर)** इतने पर भी उनका कार्य काला न होता था। उनके शर मुझे भी लगे थे, परन्तु उनसे तो पीड़ा न पहुँचती थी, हृदय में एक प्रकार की विचित्र गुदगुदी उठने लगती थी। **(कुछ ठहरकर)** पर, **(फिर चन्द्रमा को देखते हुए)** इसका वर्ण है श्वेत और इसके कार्य हैं काले ! **(कुछ ठहरकर सामने देखते हुए)** हाँ, उनका तीसरा धनुष, जो वे कभी-कभी

अपने हाथों में उठाते थे, अवश्य भीषण था, परन्तु उसके शर बिना किसी भेद-भाव के **(फिर चन्द्रमा की ओर देखते हुए)** इस निगोड़े धनुष के समान सभी पर थोड़े ही चलते थे। **(कुछ ठहरकर)** वे तो शत्रुओं पर ही चलते थे, अलका ! **(फिर चुप होकर ध्यानपूर्वक नर्मदा-तट पर पड़े हुए लकड़ी के ठूँठों को देखती है और दौड़कर उनके निकट जाकर गाना आरम्भ करदेती है !)**

था मेरा अद्भुत उच्छ्‌वास !
बढ़ता जाता था वह, तन का होता था नित ह्रास।
सारे अंग-अंग घुल-घुल कर, जाते थे उसके ही संग,
पर, आया है काल आज वह जब मैं होकर निपट अनंग।
बिना किसी के देखे, जाकर हृदयेश्वर की सुखमय गोद,
कर लूँ ग्रहण त्यागकर यह तन, पाकर चिता-अनल-संयोग।

(गाते-गाते लकड़ी इकट्ठी कर उसकी चिता बनाती है और उसमें बैठती है। गाना बन्द कर)

जल, जल, अपने आप जल उठ ! **(न जलते देख)** नहीं जलेगी, नहीं जलेगी ? अरे, सतियों की तो आज्ञामात्र से तू जल उठती थी। मैं तो सती हूँ, देवी पूर्ण सती। मनसा, वाचा, कर्मणा, हर प्रकार से शुद्ध हूँ। फिर क्यों नहीं जलती ? **(कुछ ठहरकर ऊपर देख)** तारिकाओ, तुम्हीं में से एक टूटकर इसे जला दो ! **(कुछ ठहरकर एकटक तारों को देखते और सिर हिलाकर गिड़गिड़ाते हुए)** तुम्हारी बड़ी कृपा होगी, परम दया होगी, अवर्णनीय अनुकम्पा होगी ! अरे मेरे वर्त्तमान ताप से अग्नि-ज्वालाओं का ताप कहीं कम होगा, कहीं कम ! भस्म ही मेरा ताप शीतल करेगी ? **(कुछ देर तक चुप रहती है। उसी समय नर्मदा में कुछ जलते हुए दीपक बहकर आते हैं जिन्हें देख प्रसन्न होकर चिता से उठ, दीपक की ओर जाते हुए)** तू भी न जली, तारिकाएँ भी न टूटीं, पर, नर्मदा माता ने मेरी सुन ली। **(पानी को अँगुलियों से पीछे की ओर ठेलती है। धीरे-धीरे एक दीपक किनारे पर लगता है, उसे उठा चिता के निकट आकर उससे चिता जलाती और पुनः गाती है।)**

जल-जल अनल ! दुखी-जन-त्राण !

दुखियों के हित तप्त रूप तव, सागर-सम शीतलता-खान
अरुण-अरुण आभामय तेरी ज्वालाओं का यह उत्थान,
लहरों-सा लगता मम मन को, नाच रहा जो नाव-समान !

(धक-धक करके जलने वाली चिता को हाथ जोड़कर)

पहुँचा दो, पहुँचा दो, देवि, वहीं पहुँचा दो जहाँ वे हैं। उनके बिना यह लोक कुम्भीपाक और रौरव से भी बुरा है।

[चिता की ओर आगे बढ़ती है।]

[नेपथ्य में—'राज्यश्री ! राज्यश्री !' जोर का शब्द होता है।]

राज्यश्री : (चौंककर, पीछे की ओर देख) कौन ? भ्राता, शिलादित्य !

[नेपथ्य में 'हां, शिलादित्य ही है,' पुनः यह शब्द होता है। शीघ्रता से हर्ष का प्रवेश राज्यश्री शीघ्रता से धधकती हुई चिता की ओर बढ़ती है, पर हर्ष दौड़कर उसे पकड़ लेता है।]

(यवनिका-पात)

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान : कर्णसुवर्ण में शशांक नरेन्द्रगुप्त के प्रासाद का दालान

समय : सन्ध्या

[दालान के पीछे की भित्ति रँगी हुई है। दालान में कोई द्वार नहीं है। दोनों ओर कुंभी और भरणी से युक्त दो स्तम्भ हैं। भित्ति से लगा हुआ सुवर्णमण्डित रत्नों से जड़ा शयन (एक प्रकार का सोफा) रखा है, जिस पर शशांक नरेन्द्रगुप्त बैठा है। शशांक की अवस्था लगभग ३५ वर्ष की है। वह गौर वर्ण का ऊँचा और हृष्ट-पुष्ट शरीर का व्यक्ति है। सिर, मूँछों और गलमूँछों के बाल काले हैं। श्वेत रंग का उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किये है। सिर खुला है और मस्तक पर केशर का त्रिपुण्ड है। कानों में कुण्डल, गले में हार, भुजाओं में केयूर, हाथों में वलय और अँगुलियों में मुद्रिकाएँ हैं। सभी भूषण सुवर्ण के रत्न-जटित हैं। शयन के पास ही एक सुवर्णमण्डित आसन्दी पर यशोधवलदेव बैठा है। यशोधवलदेव की अवस्था लगभग ६५ वर्ष की है। वह भी गौर वर्ण का ऊँचा-पूरा हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति है। सिर, मूँछों और दाढ़ी के सब केश श्वेत हो गये हैं। दाढ़ी वक्षःस्थल तक फैली हुई है। वह भी उत्तरीय और अधोवस्त्र तथा शशांक के सदृश ही भूषण धारण किये है। आयुध भी लगाये है। शशांक और यशोधवल दोनों के सिर झुके हुए हैं। दोनों के मुख पर चिन्ता का साम्राज्य है। दो खाली आसन्दियाँ शयन के सामने रखी हैं। दालान में निस्तब्धता छायी हुई है।]

यशोधवल : (धीरे-धीरे सिर उठाते हुए) तो वर्द्धनों की अधीनता स्वीकार करना ही परम प्रतापी गुप्त-वंश के वंशज, परमभट्टारक महाराजाधिराज शशांक नरेन्द्रगुप्त का अन्तिम निर्णय है?

शशांक : (सिर उठाते हुए) जिनकी गोद में मैं छोटे से बड़ा हुआ हूँ, जिनकी गोद में मैंने अगणित बाल-क्रीड़ाएँ की हैं, उनसे मैं वाक्युद्ध नहीं करना चाहता। महाबलाधिकृत, आप मेरे सेनानायक ही न होकर पितृव्य भी हैं। इस समय वर्द्धनों की अधीनता स्वीकार करने के अतिरिक्त मैं कोई अन्य उपाय ही नहीं देखता।

यशोधवल : (कुछ ठहरकर, सोचते हुए) 'इस समय' का क्या अर्थ है, परमभट्टारक ? एक बार अधीनता स्वीकार कर वर्द्धनों को अपना स्वामी मानकर फिर उनसे विश्वासघात करने की क्या आपकी इच्छा है ? राज्यवर्द्धन की हत्या के समय आप उनके माण्डलिक न थे, परन्तु अब तो······

शशांक : (बीच ही में) जिस प्रकार आप मुझ से 'इस समय' का अर्थ पूछते हैं उसी प्रकार वाक्युद्ध न करने की इच्छा रहते हुएभी मैं क्या आप से 'विश्वासघात' शब्द का अर्थ पूछ सकता हूँ ?

यशोधवल : विश्वासघात ! विश्वासघात शब्द का अर्थ स्पष्ट है, महाराजाधिराज ! आपने अभी-अभी कहा कि इस समय वर्द्धनों की अधीनता स्वीकार करने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय दिखाई नहीं पड़ता। इन शब्दों के उपयोग से ही स्पष्ट हो जाता है कि आप वर्द्धनों को केवल इस समय अपना स्वामी बना रहे हैं और समय परिवर्तित होते ही···

शशांक : हाँ, समय परिवर्तित होते ही मैं इन वर्द्धनों के विरुद्ध विद्रोह करूँगा।

यशोधवल : यह क्या स्वामी के प्रति विश्वासघात न होगा ?

शशांक : जब मैं आरम्भ से ही, इसी उद्देश्य से उनकी अधीनता स्वीकार कर रहा हूँ तब विश्वासघात कैसा ?

यशोधवल : परन्तु आप विद्रोह करेंगे, यह आशंका रखकर वे आपको अपना माण्डलिक नहीं बना रहे हैं। माण्डलिक बनाने और बनने के पश्चात् चक्रवर्ती और माण्डलिक दोनों में एक प्रकार की मित्रता हो जाती है; दोनों के बीच विश्वास की एक ग्रन्थि बँध जाती है; दोनों के सुख-दुःख, दोनों के आनन्द-कष्ट, एक

हो जाते हैं। एक दूसरे को सुखी करना, कष्टों के अवसर पर एक दूसरे को सहायता पहुँचाना कर्त्तव्य हो जाता है। अधीनता स्वीकार करने के पूर्व मस्तक को उन्नत रखने के प्रयत्न और इस प्रयत्न में यदि प्राण-विसर्जन करना पड़े, तो इसके लिए भी पीछे न हटने के लिए मैं सहमत हूँ। **(एकाएक आसन्दी पर खड़े हो, कोष में से खड्ग निकालते हुए)** इस खड्ग की धार अभी भी वैसी ही पैनी है, परमभट्टारक ! **(हाथों को आगे बढ़ाकर)** इन हाथों में अभी भी वैसा ही बल है, महाराजाधिराज ! निकलिए, कर्ण-सुवर्ण के इस राज-प्रासाद से बाहर निकल, गुप्त-वंश के मान और मर्यादा की रक्षा कीजिए। **(एकाएक जोश ठंडा हो जाता है।)** परन्तु···परन्तु यदि एक बार आप अधीनता स्वीकार कर लेते हैं, एक बार···एक बार वर्द्धनों को अपना स्वामी बना लेते हैं तो···तो फिर 'इस समय' शब्द का आश्रय लेकर विद्रोह की कल्पना का हृदय से मूलोच्छेदन कर दीजिए। राज्यवर्द्धन की हत्या के समान अन्य किसी षड्यन्त्र के विचार को भी हृदय से निकाल फेंकिए। **(लम्बी सांस लेकर आसन्दी पर बैठ जाता है।)**

शशांक : (सिर नीचा कर, कुछ सोचते हुए फिर सिर उठाकर) महाबलाधिकृत, आप से वाक्युद्ध की इच्छा न रहते हुए भी मुझे आज करना पड़ेगा, इसका मुझे बड़ा खेद है। देखिए आर्य, जीवन के आपके और मेरे दृष्टिकोण में बड़ा भारी अन्तर है। जिसे आप मेरा और मेरे वंश का गौरव कहते हैं, उस गौरव की रक्षा यदि न होती हो तो आप प्राण देकर इस संकट से छुटकारा पाने के लिए तैयार हैं। परन्तु उस गौरव की रक्षा के लिए मैं इससे कहीं आगे बढ़ना चाहता हूँ। रही आपकी यह स्वामी-सेवक सम्बन्ध की व्याख्या, सो यह तो मेरी समझ में ही नहीं आती। हमारा और वर्द्धनों का स्वामी-सेवक सम्बन्ध कैसा ? वे इस समय प्रबल हो गये हैं। अतः हम तब तक के लिए उनकी अधीनता स्वीकार कर लेते हैं जब तक हमारा बल नहीं बढ़ जाता। अब रहा आपका

विश्वासघात, सो आर्य, मैं अपने किसी दैहिक सुख अथवा स्वार्थ के लिए किसी से विश्वासघात करूँ तो पातकी हूँ (किसी महान् कार्य की सिद्धि के लिए, किन उपायों का अवलम्बन किया गया, यह बात गौण है; कार्य की सिद्धि मुख्य बात है) (धीरे-धीरे) राज्यवर्द्धन की हत्या किसी महान् कार्य के लिए की गयी थी। यदि वर्द्धनों के विरुद्ध विद्रोह और शिलादित्य की हत्या भी किसी महान् कार्य के लिए की जाय तो ये कर्म पाप न होकर पुण्य ही होंगे। फिर, महाबलाधिकृत, आप तो केवल मेरे और मेरे वंश के गौरव की रक्षा के लिए वर्द्धनों से युद्ध और युद्ध में प्राण-त्याग करना चाहते हैं। परन्तु उनकी अधीनता स्वीकार करने में मेरा तो इससे भी कहीं महान् उद्देश्य है, जो इस युद्ध और प्राण-त्याग से सिद्ध नहीं हो सकता।

यशोधवल : वह क्या ?

शशांक : आर्य-धर्म की रक्षा ! आप जानते हैं, शिलादित्य और उसका सहचर गुप्त-वंश का यह कुल-कलंक माधवगुप्त दोनों बौद्ध हैं। यदि इस समय मैंने शिलादित्य से युद्ध किया तो उसकी विजय निश्चित है। युद्ध में मेरा निधन होते ही गुप्त-साम्राज्य माधवगुप्त के हाथ में जायगा, वह वर्द्धनों का माण्डलिक होगा और उसके माण्डलिक होते ही सारे उत्तरापथ का राज्य-धर्म पुनः बौद्ध-धर्म होगा और पुनः आर्य्यावर्त्त पर बौद्ध-धर्म की ध्वजा फहराने लगेगी। इस समय वर्द्धनों की अधीनता स्वीकार करने और अवसर पाते ही उनके विरुद्ध विद्रोह कर शिलादित्य को भी राज्यवर्द्धन के मार्ग से ही भेज देने से आर्य-धर्म की भी रक्षा हो जायगी। यह तो सौभाग्य का विषय है कि वर्द्धन इस समय मुझे माण्डलिक बना लेना ही राज्यवर्द्धन की हत्या का समुचित दण्ड मानते हैं और युद्ध अथवा मेरा निधन उन्हें इष्ट नहीं है।

यशोधवल : परन्तु···

[प्रतिहारी का प्रवेश। उसकी वेश-भूषा स्थाण्वीश्वर के प्रतिहारी के सदृश ही है।]

प्रतिहारी : (**अभिवादन कर**) परमभट्टारक की जय हो ! गुप्तचराधिपति परमभट्टारक के दर्शन करना चाहते हैं ।

शशांक : उन्हें भेज दो !

[**प्रतिहारी का अभिवादन कर प्रस्थान । गुप्तचराधिपति का प्रवेश । वह अभिवादन करता है । वह लगभग ३० वर्ष की अवस्था का गेहुँ रंग का साधारण ऊँचाई और शरीर का व्यक्ति है । वेशभूषा यशोधवल के समान है ।**]

शशांक : कहो, क्या स्थाण्वीश्वर अथवा कान्यकुब्ज का कोई संवाद है ?

गुप्तचराधिपति : हाँ, परमभट्टारक, अभी-अभी बड़े महत्त्व का संवाद आया है ।

शशांक बैठ जाओ और कहो !

गुप्तचराधिपति : (**एक आसन्दी पर बैठकर**) राज्यश्री के मिल जाने तथा शिलादित्य को उसे लेकर कान्यकुब्ज जाने का संवाद तो आपके पास पहुँच ही चुका होगा ।

शशांक : हाँ, उसे तो यथेष्ट समय भी हो चुका ।

गुप्तचराधिपति : अब संवाद है कि राज्यश्री का उन्माद अच्छा हो गया है और शिलादित्य उसे कान्यकुब्ज के सिंहासन पर बैठाना चाहते हैं ।

शशांक : (**चौंककर**) स्त्री को राज्य-सिंहासन पर ! एक विधवा स्त्री को !

गुप्तचराधिपति : हाँ, परमभट्टारक, यही संवाद है ।

शशांक : (**यशोधवल से**) देखा, आर्य, देखा ? यह बौद्ध-धर्म की स्थापना का श्रीगणेश है । गौतम ने पुरुषों के समान स्त्रियों को संन्यास का अधिकार दिया था, शिलादित्य पुरुषों के समान स्त्रियों को सिंहासनाधिकार देना चाहता है । आह ! यह वर्णाश्रम और स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्यों में विभेद मानने वाले आर्य-धर्म पर उस बौद्ध-धर्म का, जिसमें न वर्ण है और न आश्रम, जिनमें न पुरुषों के कर्त्तव्य भिन्न हैं और न स्त्रियों के, प्रधान आक्रमण है ।

देखता हूँ, देखता हूँ कि शिलादित्य इस देश में पुनः बौद्ध-धर्म की स्थापना में सफल होता है या मैं आर्य-धर्म की रक्षा में।

[नेपथ्य में भट्ट चारण का गायन सुन पड़ता है। शशांक बड़े ध्यान से गायन को सुनता है। पल-पल पर उसके मुख पर उत्साह के भाव बढ़ते जाते हैं। यशोधवल सिर नीचा किये हुए इस गायन को सुनता है। उसके नेत्रों से आँसू बहने लगते हैं। गुप्तचराधिपति कभी शशांक का मुख देखता है और कभी यशोधवल का।]

कहाँ था उस प्रताप का पार !
गुप्त वंश में अमला-धवला करतीं कीर्ति विहार।
थे उद्भासित चण्ड-शौर्य के शुभ्र तेज से अंग,
परम पुनीत धर्म धृति अविचल रखती शान्ति अभंग;
कण-कण में थी ललित कला रति करती मधु-संचार !
कहाँ था उस प्रताप का पार !
पिता-पुत्रयुत चन्द्रगुप्त थे जिनके शौर्य निधान,
वे थे उदधि गँभीर वीर अति उदधि गुप्त मतिमान;
हिमगिरि से दक्षिण वारिधि तक फैलाया अधिकार !
कहाँ था उस प्रताप का पार !
हूण-युद्ध की सघन निशा में स्कन्दगुप्त असिधार,
भारत-गगन-हृदय पर ध्रुव-सी चमकी थी अविकार,
परिणय-सुख तज, था अपनाया केवल शौर्य अपार !
कहाँ था उस प्रताप का पार !

शशांक : **(उत्साह से गद्गद् होकर)** यह गुप्त-वंश का कीर्ति-गायन है। **(यशोधवल से)** अभी भी, अभी भी, आर्य देश में भट्टचारण मेरे वंश की कीर्ति गाते फिरते हैं। अभी भी देश गुप्तों को नहीं भूला है, क्यों ?

यशोधवल : और इतने पर भी, इतने पर भी, परमभट्टारक, वर्द्धनों की अधीनता स्वीकार करने के पक्ष में हैं !

शशांक : **(कुछ सोचते हुए)** मैं········मैं, आर्य, मैं हृदय से शासित

न होकर मस्तिष्क से शासित होता हूँ। (कुछ ठहरकर) अच्छा, अब शीत बढ़ रहा है। कक्ष में चला जाये।

[तीनों का प्रस्थान। स्वच्छ वस्त्रधारी दासों का प्रवेश। दो शयन को तथा चार चारों आसन्दियों को उठाकर ले जाते हैं। परदा गिरता है।]

दूसरा दृश्य

स्थान : स्थाण्वीश्वर के राज-प्रासाद का एक कक्ष

समय : सन्ध्या

[यह कक्ष भी उसी प्रकार का है जैसा पहले अंक के पहले दृश्य में था। दाहिनी और बांयी ओर की भित्तियों के सिरे पर एक-एक द्वार है, जिसके बाहर उद्यान का कुछ भाग दिखाई देता है। डूबते हुए सूर्य की सुनहरी किरणें उसे रंग रही हैं। उस कक्ष और इस कक्ष में अन्तर केवल इतना ही है कि इसकी भित्तियों का रंग उससे भिन्न है और आसन्दियों के स्थान पर इसके बीच में काष्ठ का एक शयन रखा है। इस पर भी गद्दी बिछी है और तकिये लगे हैं, जो श्वेत वस्त्र से ढँके हैं। शयन के दोनों ओर कुछ आसन्दियां रखी हुई हैं। शयन पर राज्यश्री बैठी हुई है। अब वह श्वेत रंग की कौशेय साड़ी पहने है और उसी रंग का वस्त्र वक्षःस्थल पर बाँधे है। भूषणों से अभी भी उसका शरीर रहित है। उसके वस्त्र अब अस्त-व्यस्त नहीं हैं, न केश ही फैले हुए हैं, मुख पर उन्माद के चिह्न भी नहीं हैं, पर शोक अभी भी दृष्टिगोचर होता है और शोक के साथ अत्यधिक गम्भीर्य। शयन के निकट की आसन्दी पर उसकी सखी अलका बैठी है। अलका गेहुँए वर्ण की सुन्दर युवती है। वेश-भूषा राज्यश्री के समान ही है, केवल इतना अन्तर है कि इसके मस्तक पर टिकली है। राज्यश्री तम्बूरा बजाकर गा रही है।]

सच्चा इष्ट एक बलिदान !
इसी इष्ट से मानव-तन का हुआ सृष्टि में श्रेष्ठ स्थान।
धन को जब धनवान,
विद्या को विद्वान,
बल को जब बलवान,
करते हैं बलिदान,

तब उनके सुख का शब्दों में हो सकता क्या कभी बखान ?
क्षुधितों, दलितों की सेवा में जो तज देता है निज प्रान ।
उस बड़भागी के सम जग में किसका है सौभाग्य महान् !

[**गान पूर्ण होने पर तम्बूरा रख देती है ।**]

अलका : कितना सुन्दर गायन है, राजपुत्री; और फिर कितनी सुन्दरता से आपने गाया है !

राज्यश्री : (लम्बी साँस लेकर) यह गान-विद्या ही तो मेरी शान्ति का एक अवलम्ब है, अलका ! अत्यधिक शोक में जब मुझे उन्माद-सा हो गया था तब कारागृह और विन्ध्यपर्वत-प्रदेश, दोनों ही स्थलों पर इसी से थोड़ी शान्ति मिलती थी। (**कुछ ठहरकर सोचते हुए**)···पर नहीं, उस समय इसके अतिरिक्त एक और भी अवलम्ब था।

अलका : वह क्या, राजपुत्री ?

राज्यश्री : तुम्हारा नाम। उस समय का मुझे पूर्ण स्मरण तो नहीं है, परन्तु कुछ-कुछ स्मरण अवश्य है। मुझे स्मृति आती है कि अनेक बार मुझे ऐसा भास होता था कि तुम मेरे संग ही हो; और मैं जो कुछ कहना चाहती, तुम्हीं को सम्बोधन कर कहती थी।

अलका : इसका कारण आपका मुझ पर अत्यधिक प्रेम है, राजपुत्री !

राज्यश्री : क्यों, अलका ! तुम्हारा भी तो मुझ पर उसी प्रकार का प्रेम है। क्या मैंने सुना नहीं है कि मेरे वियोग में तुम्हारी क्या दशा थी ? अब यदि मैंने भिक्षुणी होने का विचार किया है तो तुमने भी मेरा संग देने का निश्चय कर डाला (**लम्बी साँस लेकर नेत्रों में आँसू भर**) या तो वे जीवन के चिर-संगी थे या तुम हो !

अलका : (आँसू भर) राजपुत्री, परमभट्टारक की बात तो उनसे ही थी। वे दिन भी अब स्वप्न हो गये। आपके तो इस दुःख का वर्णन हो नहीं हो सकता, राजपुत्री; परन्तु आपकी वर्तमान

अवस्था देखकर मेरे हृदय को भी जो अवस्था है वह मैं ही जानती हूँ।

राज्यश्री : (**आँसू बहाते हुए**) क्या करोगी, अलका, अपना-अपना भाग्य ही तो है। वह सुख कदाचित् अत्यधिक था। दैव भी कदाचित् इसे न सह सकता था। उसे भी कदाचित् उससे ईर्षा उत्पन्न हो गयी थी। (**कुछ ठहरकर, चौंककर आँसू पोंछते हुए**) पर, नहीं, सखि, मैंने अब जिस पथ पर चलने का विचार किया है उसमें तो शोक का कोई स्थान नहीं। ये समस्त लौकिक सुख अनित्य हैं, स्वप्न हैं। तुम जानती ही हो कि भगवान् बुद्ध के चार सत्यों का ज्ञान और अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण, जो यथार्थ में सर्वस्व बलिदान कर लोक-सेवा करना है, किसी दुःख को पास फटकने नहीं दे सकता। जब मैं इस पथ की पथिक होने चली हूँ तब शोक का मेरे निकट स्थान ही कहाँ?

अलका : आप जो कुछ कहती हैं, ज्ञान-दृष्टि से सत्य होने पर भी, उसे व्यवहार में लाने के लिए कदाचित् कुछ समय लगेगा। इसलिए हम दोनों भगवान् बुद्ध के उपदेश का बार-बार स्मरण करके भी फिर उसी शोक-नद में बहने लगती हैं।

राज्यश्री : हाँ अलका, जो वर्षों तक होता रहा है उसे एकाएक विस्मृत नहीं किया जा सकता। किसी बात का ज्ञान एक बात है और ज्ञान को पूर्णरूप से कार्य में परिणत करना दूसरी। परन्तु इस ज्ञान-रूपी नौका के खेने में यदि हम दोनों एक-दूसरे की सहायता करती रहीं तो एक न एक दिन इस शोक-नद को पार कर ही लेंगी।

[कुछ देर को दोनों चुप रहती हैं।]

अलका : राजपुत्री, परमभट्टारक तो आपको कान्यकुब्ज के सिंहासन पर बैठाना चाहते हैं न ?

राज्यश्री : हाँ, उन्हें सदा इसी प्रकार की नयी-नयी बातें सूझा करती हैं, परन्तु यह असम्भव बात है।

अलका : यह क्यों ?

राज्यश्री : पति के साथ पत्नी का राज्याभिषेक होना दूसरी बात है, परन्तु एक तो पृथक् रूप से अब तक इस देश में किसी स्त्री का राज्यभिषेक नहीं हुआ, दूसरे मैं विधवा। विधवा को आर्यसमाज में किसी भी मंगल-कार्य में भाग लेने का अधिकार नहीं। और राज्य में तो अभिषेक से लेकर मृत्यु तक मंगल ही मंगल कार्य करने पड़ते हैं। तीसरे मैं भिक्षुणी होने जा रही हूँ और वे मुझे महिषी बनाने चले हैं। यहाँ से वहाँ तक सब असंगत बातें! कान्यकुब्ज के सिंहासन को मैं कदापि स्वीकार नहीं कर सकती।

अलका : उसे कौन स्वीकृत करेगा ?

राज्यश्री : शिलादित्य।

अलका : परन्तु मैंने तो सुना है कि वे कान्यकुब्ज का राज्य इसलिए नहीं ग्रहण करना चाहते कि वह कनिष्ठा भगिनी का राज्य है।

राज्यश्री : ये सब निरर्थक बातें हैं। उन्हें कान्यकुब्ज का सिंहासन स्वीकार करना ही होगा।

[हर्ष का दहिनी ओर के द्वार से प्रवेश। अब वे श्वेत कौशेय के उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किये हुए हैं। दोनों की सुनहरी किनार है। उत्तरीय के कोनों पर राजहंस बने हैं। साथ ही कुण्डल, हार, केयूर, वलय और मुद्रिकाएँ भी पहने हैं। सब भूषण स्वर्ण के हैं जो रत्नों से जगमगा रहे हैं। सिर के बाल अब लम्बे हो गये हैं और सिर पर अर्द्ध-चन्द्राकार-रूप में पगड़ी के समान पुष्पमाला बँधी हुई है। मस्तक पर केशर का त्रिपुण्ड है और पैरों में काष्ठ की पादुकाएँ। पादुकाओं में स्वर्ण और रत्न लगे हुए हैं। हर्ष को देखकर राज्यश्री और अलका दोनों खड़ी हो जाती हैं।]

हर्ष : **(शयन की ओर बढ़ते हुए)** कहो, राज्यश्री, कैसा स्वास्थ्य है? **(शयन पर बैठ जाता है।)**

राज्यश्री : अच्छी ही हूँ। **(वह भी शयन पर बैठती है।)**

हर्ष : **(अलका से)** तुम भी बैठो, अलका, इस समय राजपुत्री को और तुम्हें एक आवश्यक संवाद सुनाने के लिए आया हूँ।

अलका : जो आज्ञा, परमभट्टारक! **(एक आसन्दी पर बैठ जाती है।)**

राज्यश्री, मैंने तुम्हारे अभिषेक का मुहूर्त निकलवा लिया है। अक्षय-तृतीया को यह शुभ कार्य किया जायगा।

राज्यश्री : **(व्यंग से)** मेरे भिक्षुणी-पद का अभिषेक न ?

हर्ष : **(जल्दी से)** नहीं-नहीं, तुम्हारे कान्यकुब्ज के राज्य-पद का अभिषेक। तुम्हारी इच्छानुसार धर्म-शिक्षा के लिए मैंने तुम्हारेअ ध्यापक की नियुक्ति कर दी है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम्हारा भिक्षुणी होना भी मुझे स्वीकृत है।

राज्यश्री : शिलादित्य, तुम्हारी अवस्था मुझ से कुछ अधिक है, अतः मैं यह कैसे कहूँ कि तुम कई बार बालकों की-सी बातें करते हो; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि मेरे इस अभिषेक के सम्बन्ध में तुम कुछ इसी प्रकार की बातें किया करते हो।

हर्ष : इसमें बालकों की-सी क्या बात है ?

राज्यश्री : और नहीं तो क्या है ?

हर्ष : पर क्यों ?

राज्यश्री : क्यों क्या, कहीं ऐसा हो सकता है ?

हर्ष : क्यों नहीं हो सकता ?

राज्यश्री : आज तक कभी ऐसा हुआ है ?

हर्ष : आज तक कभी कोई राजपुत्री भिक्षुणी हुई है ?

राज्यश्री : राजपुत्री चाहे न हुई हो, सहस्रों स्त्रियाँ हुई हैं। परन्तु पति के संग को छोड़कर, पृथक रूप से आज-पर्यन्त इस देश में किसी स्त्री का राज्यभिषेक नहीं हुआ।

हर्ष : पति के संग तो हुआ है न ?

राज्यश्री : वह दूसरी बात है।

हर्ष : क्यों, दूसरी बात क्यों है ?

राज्यश्री : इसलिए कि उस समय यथार्थ में पति का राज्याभिषेक होता है पत्नी का नहीं; वह तो उनकी सहधर्मिणी के समान केवल उनके संग सिंहासन पर बैठी रहती है।

हर्ष : और बिना पत्नी के अकेले पति का राज्याभिषेक होता है या नहीं ?

राज्यश्री : क्यों नहीं होता ? अभी तुम्हारा ही हुआ है।

हर्ष : तब पत्नी का भी पति के समान पृथक् रूप से राज्याभिषेक क्या नहीं हो सकता ?

राज्यश्री : (**तीक्ष्ण स्वर में**) शिलादित्य, शिलादित्य, तुम कैसी बातें करते हो ? कहीं विधवा का राज्यभिषेक हो सकता है ?

हर्ष : विधुर का हो सकता है या नहीं ?

राज्यश्री · परन्तु विधवा को किसी मंगल-कार्य में भाग लेने का अधिकार नहीं है।

हर्ष : यह विधवा के प्रति घोर अन्याय है। जो विधवा समाज में ब्रह्मचर्य और सेवा का अद्भुत आदर्श उपस्थित करने के लिए समस्त लौकिक सुखों को तिलांजलि देकर आजन्म तपस्या करती है, उसे मंगल-कार्यों में भाग लेने का अधिकार नहीं ! आह ! सच तो यह है कि प्रत्येक मंगल-कार्य का आरम्भ ही आर्यों को उस तपस्विनी के हाथों कराना चाहिए। वह तो समाज के लिए साक्षात् देवी है, राज्यश्री, साक्षात् देवी !

राज्यश्री : (**कुछ ठहर कर**) शिलादित्य, इन सब बातों में तर्क के लिए कोई स्थान नहीं है; इनका निर्णय परम्परागत परिपाटी से होता है।

हर्ष : जो परिपाटी तर्क के सम्मुख नहीं ठहर सकती, उसका कोई मूल्य नहीं है।

राज्यश्री : यह तुम्हारा हठ है।

हर्ष : कदापि नहीं, मैं इस बात पर निरर्थक हठ नहीं करना चाहता। या तो तर्क कर कोई मुझे यह सिद्ध कर दे कि मेरा अमुक मत ठीक नहीं है, या वह मेरा मत मान ले। (अमुक बात आज पर्यन्त नहीं हुई है इसलिए वह आज, और भविष्य में भी नहीं हो सकती, यह मैं नहीं मानता। यदि कोई बात आज-पर्यन्त नहीं हुई है और वह उचित है तो अवश्य होनी चाहिए)। अब तक स्त्रियाँ पुरुषों की अनुगामिनी रही हैं। पुरुषों का स्थान समाज में ऊँचा और स्त्रियों का निम्न माना गया है। भगवान् बुद्ध ने

स्त्रियों को पुरुषों की अनुगामिनी न मानकर, संगिनी मान, उन्हें धार्मिक कार्यों में पुरुषों के समान ही अधिकार दे दिये हैं। सद्-धर्म्म में यदि पुरुष भिक्षु हो सकते हैं तो स्त्रियाँ भी भिक्षुणी। मैं राज-काज में भी स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार देने की परिपाटी चलाना चाहता हूँ। यदि पुरुष सिंहासनासीन हो सकते हैं, तो स्त्रियाँ भी, विधवाएँ भी। मेरे इस प्रश्न की सफलता तुम पर अवलम्बित है। तुम्हारा यह ज्येष्ठ भ्राता, तुम्हारा यह प्यारा भ्राता शिलादित्य, तुम से कान्यकुब्ज के सिंहासन को ग्रहण करने के लिए प्रार्थना करता है! **(उत्तरीय को दोनों हाथों से फैलाकर राज्यश्री के आगे करते हुए)** नहीं, नहीं, हर्ष तुम से इसे स्वीकार करने की भिक्षा माँगता है!

[राज्यश्री शीघ्रतापूर्वक अपने हाथों से हर्ष के उत्तरीय को समेट देती है। उसके नेत्रों से आँसू बहने लगते हैं वह सिर झुका लेती है। कुछ देर तक निस्तब्धता रहती है।]

राज्यश्री : (धीरे-धीरे) शिलादित्य, तुमने मुझे बड़ी कठिन परिस्थिति में डाल दिया।

हर्ष : किस प्रकार, राज्यश्री?

राज्यश्री : **(सिर उठाते हुए)** परम्परागत परिपाटी को यदि मैं एक ओर रख भी दूँ तो तुम जानते हो, मैं अपने दुःख से निवृत होने के शिए पहले चितारोहण करना चाहती थी।

हर्ष : जानता हूँ।

राज्यश्री . वह तुमने न करने दिया, तब मैंने भिक्षुणी होने का विचार किया।

हर्ष : यह भी जानता हूँ।

राज्यश्री : और उसके स्थान पर तुम मुझे राज्य ग्रहण करने के लिए कह रहे हो। कह रहे हो इतना ही नहीं, अत्यधिक आग्रह कर रहे हो, और आग्रह कर रहे हो इतना ही नहीं, भिक्षा माँगकर बाध्य कर रहे हो।

हर्ष : देखो, राज्यश्री, मेरी भी इच्छा राज्य ग्रहण करने की न थी।

मैं आर्य-धर्म का अनुसरण कर, संन्यासी हो, वन में जाकर केवल अपने कल्याण का चिन्तन नहीं करना चाहता था, क्योंकि वह तो स्वार्थ हो जाता। मैं भी वास्तव में भिक्षु होकर मठ में निवास कर संसार का कल्याण करना चाहता था। (संसार के कल्याण में दत्तचित्त रहने पर अपना कल्याण तो आप-से-आप हो जाता है, उसके लिए चिन्तन करने के स्वार्थ में भी पड़ने की आवश्यकता नहीं होती) परन्तु मैंने वह भी न कर उसी कार्य को, राज्य ग्रहण करके, करने का निश्चय किया है। तुम भी तो भिक्षुणी होकर संसार के कल्याण में ही दत्तचित्त होना चाहती हो न?

राज्यश्री : अवश्य!

हर्ष : वह तुम राज्य ग्रहण करने पर, यदि उसमें ममत्व न रखोगी, तो भिक्षुणी होने की अपेक्षा कहीं अधिक कर सकोगी। अन्त में यही सोचकर मैंने भी राज्य ग्रहण कर लिया और इतने ही दिनों के अनुभव से मैं देखता हूँ कि मैंने राज्य ग्रहण कर कोई भूल नहीं की है।

[राज्यश्री फिर कोई उत्तर नहीं देती है और सिर झुका लेती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

राज्यश्री : **(धीरे-धीरे)** क्या तुम्हारा विश्वास है कि मुझ से राज-काज चल सकेगा?

हर्ष : तुम्हारे सदृश विचक्षण बुद्धिमती और विदुषी नारी से यदि राज-काज नहीं चलेगा तो फिर किससे चलेगा? मुझे इस बात का विश्वास है कि तुम यह आदर्श उपस्थित कर सकोगी कि महिलाएँ भी उसी प्रकार राज-काज कर सकती हैं जिस प्रकार पुरुष; वरन् उनसे भी कहीं अच्छा। यदि मुझे इतना विश्वास न होता तो मैं तुम से इस सम्बन्ध में इतना आग्रह न करता। फिर इस विषय में मैंने एक और निश्चय किया है।

राज्यश्री : वह क्या?

हर्ष : मैं स्वयं तुम्हारे साथ कान्यकुब्ज में रहूँगा।

राज्यश्री : और स्थाण्वीश्वर का राज्य ?

हर्ष : वह कान्यकुब्ज का माण्डलिक राज्य होगा।

राज्यश्री : (**चौंककर**) क्या कहते हो, क्या कहते हो, शिलादित्य ! यह त्याग ! यह अपूर्व त्याग !

हर्ष : इसमें इतना ही तो त्याग है न कि, मैं सम्राट् न हुआ और तुम सम्राज्ञी हुईं ?

राज्यश्री : यह क्या छोटा त्याग है ? एक-एक कौड़ी के लिए सहोदर भ्राता एक-दूसरे का सिर काटने को उद्यत रहते हैं और तुम इतने बड़े साम्राज्य को ठोकर मार रहे हो !

हर्ष : राज्य का इस दृष्टि से मेरे सामने कभी महत्त्व ही नहीं रहा। मैंने उसे राजा के पास प्रजा की धरोहरमात्र माना है। (**कुछ ठहरकर**) तुम्हारे सम्राज्ञी और मेरे माण्डलिक होने में एक और बड़ा भारी उद्देश्य है।

राज्यश्री : वह क्या ?

हर्ष : तुम्हें स्मरण होगा कि मैंने तुम से कहा था कि भारतवर्ष का कल्याण भारत को एक साम्राज्य में परिणत करने से ही हो सकता है।

राज्यश्री : हाँ, कहा था।

हर्ष : और तुम यह भी जानती हो कि मैं रक्तपात के विरुद्ध हूँ; क्योंकि एक तो सृष्टि के सर्वश्रेष्ठ प्राणी मनुष्य-वर्ग के कृत्यों में रक्त-पात को मेरी दृष्टि से कोई स्थान ही नहीं है; फिर रक्तपात द्वारा जिस साम्राज्य की स्थापना होती है वह कभी चिर स्थायी नहीं रह सकता।

राज्यश्री : तुम्हारे इन मतों को मैं भली भाँति जानती हूँ और तुम्हारे इन मतों से सहमत भी हूँ।

हर्ष : ऐसी परिस्थिति में, यदि मैं सारे देश में एक साम्राज्य की स्थापना के उद्देश्य को स्पष्ट कर स्वेच्छापूर्वक तुम्हारा माण्डलिक हो गया तो अन्य राज्यों के लिए एक उदाहरण हो जायगा और मैं अन्य राजाओं को समझा-बुझाकर बिना

रक्तपात के ही साम्राज्य के अन्तर्गत लाने का प्रयत्न करूँगा।

[कुछ देर तक फिर निस्तब्धता रहती है।]

हर्ष : फिर अब तो तुम्हें स्वीकार है न ?

राज्यश्री : **(कुछ सोचते हुए)** मैं क्या कहूँ, कुछ कहा नहीं जाता ! न जाने भाग्य मुझे कहाँ ले जा रहा है ! चितारोहण से सिंहासनारोहण तक तो बात आ गयी है। भविष्य में न जाने और क्या होना है ! **(कुछ ठहरकर)** तुमने मुझे इस प्रकार विवश किया है कि मैं कुछ कह ही नहीं सकती। जो तुम्हारी इच्छा हो, करो ! तुम ज्येष्ठ भ्राता हो ! मैं तुम्हारी आज्ञा का अनुसरण करूँगी। **(आँखों में आँसू भर आते हैं।)**

[परदा गिरता है।]

तीसरा दृश्य

स्थान : कान्यकब्ज का मार्ग

समय : प्रातःकाल

[दूरी पर अनेक खण्डों के भवन दिखाई देते हैं। चौड़ा मार्ग है। अनेक पुरवासियों का एक समूह में बाँयीं ओर से प्रवेश। इस समूह में सभी वर्णों और अवस्थाओं के व्यक्ति हैं। सब श्वेत रंग के उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किये हुए हैं। कोई कौशेय के और कोई सूती। किसी के वस्त्र मोटे और किसी के पतले; किसी-किसी के वस्त्रों पर सुनहरा और रुपहरा काम है। ब्राह्मण आभूषण नहीं पहनते हैं। चौड़ी शिखाओं के अतिरिक्त उनके सिर के शेष केश घुटे हुए हैं। किसी-किसी की दाढ़ी-मूँछें भी घुटी हैं। वे मस्तक, वक्षःस्थल और भुजाओं पर भस्म के त्रिपुण्ड लगाये हैं। किसी-किसी का मोटा यज्ञोपवीत भी दिखता है। अन्य वर्णों के व्यक्ति मस्तक पर केशर का त्रिपुण्ड लगाये हैं, तथा कुण्डल, हार, केयूर, वलय, मुद्रिकाएँ आदि आभूषण भी पहने हैं; सबके आभूषण सुवर्ण के हैं, और किसी-किसी के आभूषणों में रत्न भी जड़े हैं। आगे चलने वाले के हाथ में चाँदी का एक थाल है, जिसमें कुंकुम, अक्षत, श्रीफल, कपूर और पुष्पमालाएँ हैं। दाहिनी ओर से चार ब्राह्मणों का प्रवेश। चारों की अधेड़ अवस्था है। इनकी वेश-भूषा भी समूह के ब्राह्मणों के सदृश ही है।

दाहिनी ओर से आया हुआ एक ब्राह्मण : (क्रोधित और उत्तेजित स्वर में) अच्छा, अन्त मे कान्यकुब्ज के भी प्रायः सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति राज्यश्री के अभिषेक के इस घोर अधर्म-काण्ड में सहयोग करने को तैयार हो गये?

उसका दूसरा साथी : और ब्राह्मण भी?

समूह का एक ब्राह्मण : (आगे बढ़कर) देखिए बन्धुओ, आप वृथा ही क्रोध कर रहे हैं।

दाहिनी ओर का तीसरा : (क्रोध से) वृथा का क्रोध कर रहे हैं ! अरे ! धर्म के इस नाश का अवलोकन करके भी यदि ब्राह्मण को क्रोध न आया तो किसे आयेगा !

चौथा : (क्रोध से काँपते हुए) तुम क्रोध की बात करते हो ! यदि ब्राह्मणों में सच्चा ब्राह्मणत्व होता, अरे ! यदि एक में भी होता तो वह शाप देकर इस सारे आयोजन को भस्म कर देता ।

समूह का पहला ब्राह्मण : ब्राह्मणों में जब से क्रोध का प्रादुर्भाव हुआ है तब से दूसरों का नाश करना तो दूर रहा, उनका स्वयं नाश हो रहा है ।

समूह का दूसरा ब्राह्मण : (आगे बढ़कर) हाँ, हाँ, हम लोगों के पतन का आरम्भ यथार्थ में दुर्वासा के समय से ही हुआ । उन्होंने जब वृथा के लिए राजा अम्बरीष को शाप दिया और जब भगवान् का सुदर्शन चक्र उन पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ा तब तीनों लोकों में भागने पर भी उन्हें शान्ति न मिली और अन्त में ब्राह्मण होकर उहें क्षत्रिय अम्बरीष की शरण में आना पड़ा ।

उसका पहला साथी : हाँ, वहीं से ब्राह्मणों का पतन आरम्भ हुआ, वहीं से; नहीं तो ब्राह्मण कभी क्षत्रिय की शरण जा सकता था ?

समूह का तीसरा ब्राह्मण : (आगे बढ़कर) फिर बन्धुओ, यह तो बतलाइए कि हम अधर्म का कौनसा कार्य कर रहे है ?

दाहिनी ओर का पहला : स्त्री का राज्यभिषेक अधर्म नहीं तो क्या है ?

उसका तीसरा साथी : वह भी विधवा का, जिसे किसी भी मंगल-कार्य में भाग लेने का अधिकार नहीं है ।

उसका चौथा साथी : आज-पर्यन्त कभी ऐसी घटना हुई है ?

दूसरा : सर्वदा शास्त्र-निषिद्ध, सर्वथा शास्त्र-निषिद्ध । नहीं तो महाराज दशरथ की मृत्यु और राम के वनवास के पश्चात् जब भरत ने अवध का राज्य ग्रहण न किया, तब राम की पादुकाएँ अवध के सिंहासन पर क्यों रखी जातीं, कौशल्या का अभिषेक न होता ?

महाराज पाण्डु की मृत्यु के पश्चात् अन्धे धृतराष्ट्र हस्तिनापुर के सिंहासन पर क्यों बैठते, कुन्ती का अभिषेक न होता ?

तीसरा : हाँ, हाँ, भारत के इतिहास में एक भी तो ऐसा दृष्टान्त दिखा दीजिए जहाँ पृथक् रूप से स्त्री का और वह भी विधवा स्त्री का राज्यभिषेक हुआ हो।

समूह का तीसरा : परन्तु किसी भी शास्त्र में यह कहीं नहीं लिखा कि स्त्री और विधवा का अभिषेक न किया जाय।

समूह का पहला : और फिर परिस्थिति के अनुसार शास्त्रों में सदा परिवर्तन भी तो होता है। जब हम स्मृतियों का अध्ययन करते हैं तब यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है। एक स्मृति में यदि किसी विषय पर एक आज्ञा है तो दूसरी में ठीक उसके विपरीत।

समूह का दूसरा : हाँ, हाँ, ब्राह्मण चाणक्य ने शूद्र चन्द्रगुप्त को समस्त भारत का सम्राट् बना उसका राज्याभिषेक किया था। उसके पूर्व किसी शूद्र का राज्याभिषेक नहीं हुआ था। आज हम एक विधवा स्त्री के राज्याभिषेक में सहयोग देकर, स्त्रियों और विधवा स्त्रियों तक को सिंहासनासीन होने का अधिकार है, यह सिद्ध कर देंगे।

समूह का तीसरा : और यह कार्य भी तो कान्यकुब्ज देश का एक परम विद्वान्, ब्राह्मण, राज्य का महाधर्माध्यक्ष ही करा रहा है।

दाहिनी ओर का पहला : राज-सत्ता ने उसे धन देकर मोल ले लिया है।

समूह का चौथा ब्राह्मण : (आगे बढ़कर क्रोध से) बस, बस, आगे तक शब्द नहीं; उन्हें मोल ले लिया है ! जिह्वा को थोड़ा वश में रखकर वाक्य मुख से निकालो। सारे कान्यकुब्ज देश में उसके समान विद्वान्, त्यागी और निःस्पृह ब्राह्मण न मिलेगा, उस के लिए ऐसे वाक्य !

समूह का पहला : (अपने साथी के कन्धे को थपथपाते हुए) शान्त, बन्धु, शान्त, हमको क्रोध नहीं करना है। वह जो उचित

समझते हैं वह उन्हें करने दें। मनुष्य जब अपने मार्ग पर बलपूर्वक दूसरे को चलाने का प्रयत्न करता है तभी कलह की उत्पत्ति होती है। हम कलह नहीं चाहते।

दाहिनी ओर का दूसरा : देखिए, बन्धुओ, मैं आप लोगों को एक बात और भी सूचित कर देना चाहता हूँ।

समूह का पहला : क्या ?

दाहिनी ओर का दूसरा : आप जिस कार्य में सहयोग देने जा रहे हैं वह हमारे आर्य-धर्म के प्रतिकूल है; इतना ही नहीं, आप आर्य धर्म के स्थान पर बौद्ध धर्म को उत्तेजना देने का भी पातक कर रहे हैं।

समूह का पहला : यह कैसे ?

दाहिनी ओर का दूसरा : हर्षवर्धन और राज्यश्री दोनों, यथार्थ में बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं। आपने सुना ही होगा कि हर्षवर्द्धन स्थाण्वीश्वर का राज्य ग्रहण करने के पूर्व, चाहे वे बौद्ध न हो गये हों, किन्तु बौद्ध-भिक्षुओं के समान चीवर पहने रहते थे। राज्यश्री तो बौद्ध-भिक्षुणी होना चाहती थीं, इसमें सन्देह ही नहीं। आज हर्षवर्द्धन स्त्री का अभिषेक करा, स्त्री-पुरुषों के विभिन्न धर्मों और कर्त्तव्यों पर कुठाराघात करने जा रहे हैं, और कल वे समस्त वर्णों को एक करने का प्रयत्न कर, जिस वर्णाश्रम की नींव पर आर्य-धर्म खड़ा हुआ है, उसी को खोद डालने का प्रयत्न करेंगे; क्योंकि बौद्ध-धर्म में वर्णाश्रम का कोई स्थान नहीं है। बौद्धों ने अब तक आर्य-धर्म को छिन्न-छिन्न करने का कम उद्योग नहीं किया। जिस गुप्त साम्राज्य ने आर्य-धर्म का जीर्णोद्धार किया उस साम्राज्य का हूणों की सहायता कर बौद्धों ने हीं नाश कराया है। आप लोग जो कुछ करने जा रहे हैं, उसे सोच-समझकर कीजिए।

समूह का एक युवक : (आगे बढ़कर) यह सब आप क्या अनर्गल बक रहे हैं ? आर्य-धर्म और बौद्ध-धर्म क्या कोई पृथक् धर्म हैं ?

दाहिनी ओर का दूसरा : पृथक् नहीं तो क्या हैं ?

वही युवक : कदापि नहीं। (बौद्ध-धर्म को मैं आर्य-धर्म की एक शाखा मानता हूँ। जब ब्राह्मणों ने यज्ञों की भरमार की, हिंसा को सर्वोच्च शिखर पर बिठा दिया तब भगवान् ने गौतम का अवतार धारण कर आर्य-धर्म का संशोधनमात्र किया है। 'आर्य-धर्म नष्ट हो रहा है,' 'वर्णाश्रम धर्म पर आपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा है' इस प्रकार चिल्ला-चिल्लाकर ब्राह्मणों ने, और 'सद्धर्म्म संकट में है, 'सद्धर्म्म का नाश करने पर ब्राह्मण कटिबद्ध हुए हैं' इस प्रकार चिल्ला-चिल्लाकर बौद्धों ने एक ही देश में रहने वालों, एक ही जाति और सभ्यता के अनुयायिओं में परस्पर झगड़ा मचवा देश को यथेष्ट हानि पहुँचायी है। अब क्षमा कीजिए, आप धर्माचार्यगण, क्षमा कीजिए !

दाहिनी ओर का तीसरा : (ब्राह्मणों को छोड़कर अन्य वर्णों को धर्म पर विवाद करने का कोई अधिकार नहीं है।

समूह का दूसरा युवक : **(आगे बढ़कर)** देखिए, मैं तो इस सारे वि य को एक दूसरी ही दृष्टि से देखता हूँ। राज्यश्री हमारे कान्यकुब्ज देश की महिषी हैं। मौखरि वंश में यदि कोई पुरुष नहीं बचा तो स्त्री को कान्यकुब्ज के सिंहासन पर बिठा हर्षवर्द्धन कान्यकुब्ज देश पर बड़ा भारी उपकार कर रहे हैं। इतना ही नहीं, ये स्थाण्वीश्वर को हमारे देश का माण्डलिक राज्य बना, एक देश पर हमारे देश को सत्ता रहे और हमारे देश का महत्त्व बढ़े, हमें इससे अधिक हर्ष की और कोई बात ही नहीं होनी चाहिए।

समूह का एक अधेड़ व्यक्ति : **(आगे बढ़कर)** देखिए बन्धुओ, न तो यह स्थान शास्त्रार्थ का है और न अन्य चर्चाओं का। यह तो थोड़ा निर्जन पथ था, अन्यथा यह झगड़ा सुनकर अभी यहाँ एक भीड़ इकट्ठी हो गई होती। राज्याभिषेक का समय हो रहा है। ठीक समय पर हमें वहाँ पहुँचना है !

समूह का एक और व्यक्ति : हाँ-हाँ, इस प्रकार के विवादों का अन्त थोड़े ही हो सकता है !

समूह के कुछ व्यक्ति : (**एक साथ**) हाँ-हाँ, चलिए, चलिए।

[**समूह का दाहिनी ओर प्रस्थान। पर, समूह के ब्राह्मणों में से एक अधेड़ अवस्था का ब्राह्मण, जिसने इस विवाद में कोई भाग न लिया था, ठहर जाता है।**]

ठहरा हुआ ब्राह्मण : (**समूह के जाने के पश्चात् दाहिनी ओर से आये हुए दूसरे ब्राह्मण से**) आपकी सब बातों में बौद्ध-धर्म सम्बन्धी बात उपयुक्त थी। हर्ष अपने को शैव कहते हुए भी अवश्य बौद्ध है।

दाहिनी ओर का दूसरा : हाँ-हाँ, प्रच्छन्न बौद्ध है।

ठहरा हुआ : और राज्यश्री का अभिषेक यथार्थ में आर्य-धर्म के मूलोच्छेदन और बौद्ध-धर्म को राज्य-धर्म बनाने का पुनः श्रीगणेश है।

दूसरा : इसमें सन्देह ही नहीं; परन्तु कठिनाई तो यह है कि लोग समझते नहीं।

ठहरा हुआ : आपके कथन का मुझ पर इतना प्रभाव पड़ा कि मैं उस समूह के संग जा ही नहीं सका। (**कुछ ठहरकर**) मेरे मन में तो एकाएक यह बात उठी है कि जिस प्रकार बौद्धों ने गुप्त-साम्राज्य को नष्ट कर दिया, उसी प्रकार हमें इस वर्द्धन-सत्ता का नाश करना चाहिए।

दूसरा : यदि ऐसा किया जा सके तो क्या कहना है !

पहला : निस्सन्देह !

ठहरा हुआ : अवश्य किया जा सकता है। मैं अकर्मण्य होकर नहीं रह सकता। या तो मैं राज्यश्री के राज्याभिषेक में सम्मिलित हो इस राज्य से सहयोग करता या अब इस राज्य का नाश ही कर दूंगा।

पहला : (**प्रसन्न होकर**) यह किस प्रकार कीजिएगा बन्धु ?

ठहरा हुआ : संगठन करके। आज कान्यकुब्ज में इस राज्य की स्थापना

हो रही है और आज ही से हम इसके नाश का संगठन करेंगे।

पहला : मैं इस कार्य में योग देने को तैयार हूँ।

दूसरा : मैं भी।

तीसरा : मैं भी।

चौथा : और मैं भी।

ठहरा हुआ : और आप लोग जानते हैं कि हमारे इस शुभ कार्य में किससे सहायता मिलेगी ?

पहला : किससे ?

ठहरा हुआ : गुप्त-वंशीय गौड़ाधिपति आर्य-धर्म के कट्टर भक्त परम-भट्टारक महाराजधिराज शशांक नरेन्द्रगुप्त से।

दूसरा : परन्तु शशांक ने तो वर्द्धनों की अधीनता स्वीकार कर ली है। मैंने सुना है कि हर्ष के सदृश वे भी राज्यश्री के माण्डलिक होंगे।

ठहरा हुआ : (**आश्चर्य से**) आर्य-धर्म के कट्टर भक्त शशांक, बौद्ध हर्ष के माण्डलिक ! एक स्त्री के माण्डलिक ! हो नहीं सकता ! असम्भव है !

तीसरा : असम्भव, हर्ष की अधीनता उन्होंने स्वीकार कर ली है, यह तो सारा देश जानता है। न जाने आप ही इस बात से कैसे अनभिज्ञ हैं, और राज्यश्री के माण्डलिक होने वे यहाँ आ भी गये हैं। आज के राज्याभिषेक में अन्य माण्डलिकों के समान वे भी राज्यश्री का अभिवादन करेंगे।

चौथा : (**सिर नीचा कर कुछ सोचते हुए**) देखो बन्धुओ, शशांक बड़े भारी राजनीतिज्ञ हैं। मैंने सुना है कि हर्ष की अधीनता स्वीकार करने में उनका आन्तरिक अभिप्राय संमय पाकर इस सत्ता को उलट देना है। वही कदाचित् राज्यश्री के माण्डलिक होने में भी होगा।

ठहरा हुआ : (**प्रसन्न होकर**) हाँ, हाँ, यही बात है, यही बात है; अन्यथा आर्य-धर्म के कट्टर भक्त शशांक कभी ऐसा पातक कर सकते थे ! कभी नहीं। मैंने बहुत सोच-विचाकर अपनी सहायता के लिए उनका नाम लिया था। उनसे अपने को सहायता

मिलेगी, अवश्य मिलेगी।

तीसरा : देखो बन्धुओ, इस सत्ता के नाश के लिए मैं आप में से किसी से भी कम चिन्तित नहीं हूँ; परन्तु यदि हमारा कार्य ऐसी दशा की सहायता पर अवलम्बित हो, जहाँ से सहायता के स्थल पर उलटा हमारा भण्डा-फोड़ हो जावे, तो मैं इस संगठन में सम्मिलित नहीं रह सकता। हर्ष ऐसे मूर्ख नहीं कि शशांक को बिना पूर्ण विश्वास के ऐसे अवसर पर अपना माण्डलिक बनाते, जब सहज में परास्त कर उनका वध कर सकते थे।

चौथा : कभी-कभी आप बड़ी बेसमझी की बात कह बैठते हैं। शशांक का वध हर्ष के लिए असम्भव था।

तीसरा : यह क्यों ?

चौथा : इसलिए कि वे माधवगुप्त के बान्धव हैं। माधवगुप्त शशांक को क्षमा करना चाहते थे; फिर भला हर्ष उन्हें प्राण-दण्ड क्योंकर देते ? माधवगुप्त की इच्छा के विरुद्ध हर्ष कभी कोई कार्य कर सकते हैं ? **(ठहरे हुए व्यक्ति की ओर संकेत कर)** हमारे इन बन्धुओं का कथन सर्वथा ठीक है। शशांक से हमें अपने कार्य में पूर्ण सहायता मिलेगी; इतना ही नहीं, शशांक के कारण माधवगुप्त से भी और इस प्रकार इस बौद्ध-साम्राज्य का शीघ्र ही नाश हो सकेगा।

[नेपथ्य में गायन की ध्वनि सुन पड़ती है।]

पहला : लीजिए, स्त्रियों का भी एक समूह आ रहा है। अब तो सहन-शक्ति के बाहर की बात हो गयी। चलो बाबा, लौट चलें। जहाँ को जा रहे थे वहाँ अन्य किसी मार्ग से जायँगे। इन स्त्रियों से कौन विवाद करेगा !

[दाहिनी ओर से आये हुए चारों, और समूह में का ठहरा हुआ एक, इस प्रकार पाँचों ब्राह्मण दाहिनी ओर से जाते हैं। बाँयीं ओर से स्त्रियों का एक समूह आता है। सभी वर्णों और अवस्था की स्त्रियाँ हैं। सभी भिन्न-भिन्न रंगों की साड़ियां पहने हैं और वक्षःस्थलों पर वस्त्र बाँधे हैं; किसी के वस्त्र कौशेय हैं और किसी के सूती; किसी

के पतले हैं, किसी के मोटे। किसी-किसी के वस्त्रों पर सुनहरा और रुपहरा काम भी है। सभी पटबन्ध, कर्ण-कुसुम, बेहर, चन्द्रहार, भुज-बन्ध, कंकण, आरसी और मुद्रिकाएँ आदि आभूषण पहने हैं। सबके भूषण सुवर्ण के हैं, किसी-किसी में रत्न भी जड़े हैं। पैरों में सब स्त्रियाँ चाँदी के भूषण धारण किये हैं। स्त्रियाँ गा रही हैं।]

आज हम होंगी धन्य महान्,
प्राप्त कर सबसे ऊँचा स्थान।
अब तक मानव-वृन्द में, दक्षिण-वाम-विभाग—
न थे तुल्य, पर अब खुला वाम-भाग का भाग।
हर्ष ने दोनों को सम जान,
किया यह राज्यश्री का मान।

[स्त्रियों का गाते हुए प्रस्थान। कुछ देर तक नेपथ्य में गायन-ध्वनि आती रहती है, जो शनैः-शनैः दूर जाकर बन्द हो जाती है। परदा गिरता है।]

चौथा दृश्य

स्थान : कान्यकुब्ज के राज-प्रासाद का सभा-कक्ष

समय : प्रातःकाल

[सभा-कक्ष लगभग उसी प्रकार का है जैसा स्थाण्वीश्वर सभा-कक्ष था। दोनों ओर की भित्तियों के सिरों पर दो द्वार है अन्य कक्षों में खुलते हैं। इन कक्षों का बहुत थोड़ा भाग दिखायी हैं। पीछे की भित्ति के बीचों-बीच, उसके निकट ही, स्वर्णमंडित सिं रखा है। सिंहासन के पाये सिंहाकार बने हैं। सिंहासन पर सु काम की गद्दी बिछी है और उसी प्रकार के तकिये लगे हैं तथा उ नीचे पैर रखने के लिए स्वर्ण का, गद्दीदार पादपीठ रखा सिंहासन के दाहिनी ओर एक स्वर्ण के मोटे स्तम्भ पर केसरी का ध्वज है, जिस पर वृषभ का चित्र बना है। ध्वज-स्तम्भ से हुई, सिंहासन से दाहिनी ओर, एक पंक्ति में अनेक स्वर्णमंडित, सिंहासन के बाँयी ओर एक पंक्ति में अनेक रजतमण्डित आस रखी हैं। सभी पर गद्दियाँ बिछी हैं तथा तकिए लगे हैं, जो वस्त्र से ढके हैं। सिंहसन और सिंहासन के आस-पास की आस की पंक्तियों के सामने अर्द्ध-चन्द्राकार रूप में आसन्दियों की पंक्तियाँ रखी हुई हैं। ये आसन्दियाँ काष्ठ की हैं और इन प श्वेत वस्त्र से ढकी हुई गद्दियाँ बिछी हैं तथा उन पर श्वेत वस ढँके हुए तकिए लगे हैं। इन आसन्दियों के मुख सिंहासन की हैं। इन आसन्दियों की पंक्तियों के ठीक बीच से सिंहासन तक जा लिए मार्ग है जिससे ये पंक्तियाँ दो विभागों में बँट गयी हैं। स कक्ष कदली-वृक्षों, पल्लव-पुष्पों के वन्दनवारों और मंगल-कल सुसज्जित है। स्थान-स्थान पर सुवर्ण की धूपदानियों में धूप जल है। सिंहासन रिक्त है। ध्वज-स्तम्भ के निकट की पहली आ पर महाधर्माध्यक्ष बैठा हुआ है। यह गौर वर्ण का ऊँचा वृद्ध ब्रा

है। लगभग ७० वर्ष की अवस्था है। सिर पर चौड़ी श्वेत शिखा और वक्षःस्थल तक लम्बी श्वेत दाढ़ी है। शरीर की जो रोमावली दिखती है वह भी सब श्वेत हो गयी है। श्वेत उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किये हैं। उत्तरीय में से श्वेत मोटा यज्ञोपवीत दिखायी देता है। मस्तक, वक्षःस्थल और भुजाओं पर भस्म के त्रिपुण्ड लगे हैं। पैरों पर काष्ठ की पादुकाएँ हैं। उसके निकट ही आसन्दी पर हर्ष बैठे हैं। उनकी वेष-भूषा इस अंक के दूसरे दृश्य के समान है, परन्तु आज सुनहरी कोष में कटि से खड्ग भी लटक रहा है जो उस समय नहीं था। हर्ष के निकट की दो आसन्दियों पर कामरूप-नरेश कुमारराज भास्करवर्मन और गौड़ाधिपति शशांक नरेन्द्रगुप्त बैठे हैं। इनके पश्चात् इस ओर की अन्य आसन्दियों पर कुल-पुत्र विराजमान हैं। सभी की वेश-भूषा हर्ष के सदृश है। सिंहासन के बाँयीं ओर की आसन्दियों पर सामन्तगण बैठे हैं। इन्हीं में अवन्ति, सिंहनाद, भण्डि और माधवगुप्त दिखाई पड़ते हैं। सामन्तों की वेश-भूषा भी हर्ष के ही समान है। सिंहासन के सामने आसन्दियाँ, जो अर्द्ध-चन्द्राकार रूप में रखी हुई हैं, रिक्त हैं। नेपथ्य में पंच-महावाद्य बज रहे हैं जिनका थोड़ा-थोड़ा शब्द सभा-कक्ष में सुन पड़ता है। दाहिनी ओर के द्वार से प्रतिहारी का प्रवेश।]

प्रतिहारी : (अभिवादन कर) जय हो महाराजधिराज, प्रजा के पुरुष-प्रतिनिधियों का समूह द्वार पर आया है।

[हर्ष खड़े होकर दाहिनी ओर के द्वार तक जाते हैं। उनके खड़े होते ही अन्य व्यक्ति भी खड़े हो जाते हैं। प्रतिहारी अभिवादन कर दाहिनी ओर के द्वार से बाहर जाता है। प्रजा-प्रतिनिधियों का दाहिने द्वार से प्रवेश। हर्ष ब्राह्मणों को हाथ जोड़कर अभिवादन करते हैं। वे दोनों हाथ उठाकर हर्ष को आशीर्वाद देते हैं। शेष लोग झुक-झुककर हर्ष का अभिवादन करते हैं। हर्ष मस्तक झुका उसका उत्तर देते हैं। हर्ष सबों को अर्द्ध-चन्द्राकार चौकियों के वाम-विभाग में बिठाकर पुनः अपने स्थान पर बैठते हैं। अन्य व्यक्ति भी बैठ जाते हैं। नेपथ्य

में गायन की ध्वनि सुन पड़ती है। प्रतिहारी का पुनः दाहिनी ओर के द्वार से प्रवेश।]

प्रतिहारी : (अभिवादन कर) जय हो महाराजाधिराज, प्रजा के स्त्री-प्रतिनिधियों का समूह भी द्वार पर आ गया है।

[हर्ष खड़े होकर पुनः दाहिनी ओर के द्वार तक जाते हैं। उनके खड़े होने पर अन्य व्यक्ति भी खड़े होते हैं। प्रतिहारी अभिवादन कर दाहिने द्वार से बाहर जाता है। दाहिनी ओर से गायन गाते हुए महिला-समूह का प्रवेश। सभा-भवन में प्रवेश करते ही वे गायन बंद कर देती हैं। हर्ष महिला-समूह को हाथ जोड़ते हैं। वे सब झुककर हर्ष का अभिवादन करती हैं। हर्ष उन्हें अर्द्धचन्द्राकार चौकियों के दाहिने भाग में बिठाकर अपने स्थान पर बैठते हैं। शेष सभासद भी बैठ जाते हैं। कुछ देर सभा-कक्ष में निस्तब्धता रहती है, परन्तु बाहर बजते हुए पंचमहावाद्यों की धीमी-धीमी ध्वनि बराबर आती रहती है।]

महाधर्माध्यक्ष : (हर्ष से) मैं समझता हूँ, अब तो सभी आमंत्रित जन उपस्थित हो गये, अभिषेक का मुहूर्त्त-काल भी थोड़ा ही शेष है, परमभट्टारक !

हर्ष : अभी राजपुत्री को लाता हूँ, आर्य।

[हर्ष का बायें द्वार से प्रस्थान। उनके उठते ही सब खड़े हो जाते हैं, और उनके आने पर फिर सब बैठ जाते हैं। कुछ देर निस्तब्धता रहती है। बाँयें द्वार से प्रतिहारी का प्रवेश।]

प्रतिहारी : जय परममाहेश्वरी, परमादित्य-भक्त, महर्षि, राज्यश्री, महादेवी की जय !

[सब सभासद खड़े हो जाते हैं। शिविका पर राज्यश्री का प्रवेश। शिविका सुवर्ण की है। उसके ऊपर छाया नहीं है, अर्थात् ऊपर से खुली हुई है। उसे आठ शिविका-वाहक उठाये हुए हैं। वे श्वेत अधोवस्त्र पहने हैं और उनका उत्तरीय शिविका उठाने के कारण सिर पर बँधा हुआ है। वे भी कुण्डल, हार, केयूर और वलय पहने हैं। उनके भूषण सुवर्ण के हैं। शिविका में गद्दी बिछी है और तकिए लगे

हुए हैं। तकिए के सहारे राज्यश्री बैठी हुईहै। वह अभी भी श्वेत कौशेय की साड़ी पहने है और उसी प्रकार का वस्त्र वक्षःस्थल पर बाँधे है। भूषणों से अभी भी उसका शरीर रहित है। उसके मुख पर उदासी के चिह्न दृष्टि-गोचर होते हैं। शिविका के एक बगल में हर्ष और दूसरी बगल में अलका है। अलका की वेश-भूषा पहले के समान ही है। राज्यश्री हाथ जोड़कर ब्राह्मणों का अभिवादन करती है। वे दोनों हाथ उठाकर आशीर्वाद देते हैं। शेष स्त्री-पुरुष मस्तक झुकाकर राज्यश्री का अभिवादन करते हैं और वह थोड़ा-सा सिर झुकाकर उनका उत्तर देती है। शिविका सिंहासन के निकट रखी जाती है। राज्यश्री उससे उतरकर सिंहासन के एक ओर खड़ी होती है। उसी के निकट हर्ष और अलका खड़ी हो जाती है। शिविका-वाहक, शिविका उठाकर बाँयीं ओर के द्वार से बाहर जाते है। बाँयीं ओर के द्वार से सात स्त्रियों का प्रवेश। सातों स्त्रियाँ सुन्दरी हैं और उनकी अवस्था २० और २५ वर्ष के बीच में है। वे केशरि या वस्त्र धारण किये हैं, तथा सुवर्ण के भूषण पहने हैं। इन सात स्त्रियों में छः दो-दो पंक्ति में हैं और एक सबके पीछे। पहली दो स्त्रियों के हाथों में सुवर्ण का एक-एक थाल है। एक थाल में रत्नों से दैदीप्यमान राजमुकुट और राजदण्ड तथा दूसरे थाल में अभिषेक की सामग्री है। इन दोनों के पीछे की दो स्त्रियाँ कन्धों पर सुवर्ण की डाँड़ियों वाले सुरागाय की पुच्छ के श्वेत चँवर रखे हैं। इनके पीछे की दो स्त्रियों के हाथ में चन्दन की डाँड़ियों के खस के दो व्यजन हैं और इनके पीछे की एक स्त्री के हाथ में हाथी-दाँत की डाँड़ी का श्वेत छत्र है, जिसमें मोतियों की झालर लगी हुई है। सातों स्त्रियाँ सिंहासन के निकट बढ़ती हैं। पाँच तो सिंहासन के पीछे जाकर, छत्र-वाहिका बीच में तथा उसके उभय ओर एक-एक चँवर-वाहिका और एक-एक व्यजन-वाहिका खड़ी हो जाती है और थालवाली दोनों स्त्रियाँ धर्माध्यक्ष के निकट खड़ी हो जाती हैं।]

महाधर्माध्यक्ष : (राज्यश्री से) आप सिंहासनासीन हों देवी !

[राज्यश्री काँपते हुए पैरों और उदास मुख से सिंहासन पर बैठती है। महाधर्माध्यक्ष थाल में से राजमुकुट उठाकर उसके मस्तक

पर रख, राजदण्ड उसके हाथ में देता है। फिर दूसरे थाल में से सुवर्ण का कलश उठा कुश के मार्जन का मन्त्र बोलते हुए उसका मार्जन करता है।]

[इसके पश्चात् महाधर्माध्यक्ष अपने स्थान पर बैठता है। छत्र वाहिका राज्यश्री के सिर पर छत्र लगाती तथा चँवर और व्यजन वाहिकाएँ चँवर और व्यजन डुलाना आरम्भ कर देती हैं।]

प्रतिहारी : जय, परमभट्टारिका, परममाहेश्वरी, परमादित्य-भक्त परमेश्वरी, महाराज्ञी, सम्राज्ञी, राज्यश्री महादेवी की जय !

सब सभासद : (एक स्वर में) परमभट्टारिका, महाराज्ञी, सम्राज्ञी राज्यश्री महादेवी की जय !

[प्रतिध्वनि होती है। हर्ष, कुमारराज भास्करवर्मन और शशांक एक पंक्ति में तथा इन तीनों के पीछे कुल-पुत्र और सामन्तगण सिंहासन के सामने जाकर खड्ग निकाल, खड्ग मस्तक तक ले जाकर राज्यश्री का अभिवादन करते हैं। राज्यश्री काँपते हुए पैरों से खड़ी होकर मस्तक झुका अभिवादन का उत्तर देती है। प्रजा के स्त्री-पुरुष प्रतिनिधि पुष्पों की वर्षा कर पुनः जय-जयकार करते हैं, जिसकी प्रतिध्वनि होती है।]

(यवनिकापात)

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान : कान्यकुब्ज के राजप्रासाद का दालान

समय : सन्ध्या

[दालान उसी प्रकार की है जैसी दूसरे अंक के पहले दृश्य में थी, परन्तु इसकी भित्ति का रंग उससे भिन्न है। दालान में सुवर्णमण्डित शयन रखा हुआ है, जिसमें रत्न जड़े हैं। शयन पर सुनहरी काम की गद्दी बिछी है और इसी प्रकार के तकिये लगे हैं। शयन के निकट ही सुवर्णमण्डित एक आसन्दी रखी है और उस पर भी इसी प्रकार की गद्दी बिछी है तथा तकिये लगे हैं। शयन पर राज्यश्री बैठी हुई है। आसन्दी पर अलका बैठी है। शयन के एक ओर एक दासी खड़ी हुई सुवर्ण की रत्नजड़ित डाँडीवाला चँवर डुला रही है। राज्यश्री की अवस्था अब लगभग ४३ वर्ष की है। उसका शरीर यद्यपि वैसा ही है, पर, सिर के केश यत्र-तत्र श्वेत हो गए है और मस्तक पर कुछ रेखाएं तथा नेत्रों के आस-पास काले गढ़े एवं कुछ झुर्रियाँ पड़ गयी हैं। ४३ वर्ष की अवस्था में ही उस पर वृद्धावस्था का प्रभाव दिखायी पड़ रहा है। वह श्वेत कौशय साड़ी धारण किये हुए है और उसी प्रकार का वस्त्र वक्षःस्थल पर बाँधे है। सदा के समान उसका शरीर आभूषणों से रहित है। अलका की अवस्था राज्यश्री से यद्यपि अधिक है, परन्तु देखने में कम जान पड़ती है। उसके केश अभी भी काले हैं और मुख पर झुर्रियाँ भी नहीं हैं। उसकी वेशभूषा भी पहले के समान ही है। राज्यश्री तम्बूरा बजाकर गा रही है।]

मधुप-मुकुल का कैसा संग ?
स्वार्थ परार्थ-विरोधी जिसमें, रँगे एक ही रंग !
ले मधु उड़-उड़ मधुप मुकुल-कुल कर विस्तृत यह सिद्ध—

गूंज-गूंज कर करता, जग में केवल स्वार्थ-निषिद्ध ॥
सतत विलोका, जड़-कृमि तक का यद्यपि यों सम्बन्ध ।
सकल सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ यह मानव तब भी अन्ध ॥

राज्यश्री : (गाना पूर्ण होने पर तम्बूरा रखते हुए) अलका, आज मुझे सिंहासन ग्रहण किये अट्ठाईस वर्षों के सात युग पूरे होते हैं। यद्यपि अब मैं कपिशा, काश्मीर और नैपाल से लेकर नर्मदा तक एवं पूर्व समुद्र से लेकर पश्चिम समुद्र तक के परम सुन्दर एवं सभ्य आर्यावर्त्त की सम्राज्ञी हूँ, यद्यपि आज सारे आर्यावर्त में मेरे सिंहासनासीन होने के सातवें युग का उत्सव मनाया गया है, तथापि मुझे आज सबसे अधिक अशान्ति और निराशा है।

अलका : यह तो मैं देख रही हूँ, परमभट्टारिका, सात युगों से लगातार आपकी मानसिक अशान्ति देखती आ रही हूँ और आज भी देख रही हूँ।

राज्यश्री : मेरा व्यक्तिगत दुःख तो अलग बात है, अलका, वह तो सदा ही मेरे हृदय को आच्छादित किये रहता है। इतना ही नहीं, जब-जब मैं प्राणेश्वर के सिंहासन पर पैर रखती हूँ तब-तब वह और भी अधिक जाग्रत हो उठता है; जान पड़ता है, इस जन्म में वह कभी विस्मृत न होगा। परन्तु उसके अतिरिक्त आज तो एक दूसरी ही अशान्ति और निराशा चित्त को व्यथित किये हुए है।

अलका : वह क्या, सम्राज्ञी ?

राज्यश्री : वह यह, अलका कि शिलादित्य और मैं ठीक मार्ग से अपने कर्त्तव्यों का पालन कर रहे हैं या नहीं।

अलका : इस पर तो विचार करना ही निरर्थक है, परमभट्टारिका ! सारा आर्यावर्त्त आज एक स्वर से कह रहा है कि आप भगिनी-भ्राता का यह संयुक्त राज्य-संचालन सभी दृष्टियों से प्रजा के लिए हितकर हुआ है। सत्ता का प्रधान कार्य जो प्रजा में सुख-सम्पत्ति की वृद्धि है, वह हर प्रकार से हुई है। कृषि, व्यापार और कला-कौशल की आशातात उन्नति के कारण प्रजा में अतुल धन

बढ़ा है। प्रजा-जनों के कष्टों की सुनवायी के लिए पूर्ण व्यवस्था है। प्रजा में शिक्षा का महान् प्रचार हुआ है। उन्हें औषधोपचार के हर प्रकार के साधन उपलब्ध हैं। यात्रा एवं यात्रा के समय मार्ग में उन्हें सब प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त है।

राज्यश्री : (यह सब तो हुआ है, अलका, परन्तु यह सारा कार्य उस पल्लवित और पुष्पित वृक्ष के सदृश है, जिसकी जड़ पृथ्वी के भीतर गहरी न जाकर किसी चट्टान पर हो। हाल ही में मौर्य और गुप्त-साम्राज्य में भी यह सब हुआ था। वह कितने दिनों तक टिका ? शिलादित्य की सम्मति के अनुसार मैंने सिंहासन ग्रहण करने के दिन घोषणा की थी कि यह राज्य समस्त भारत-वर्ष में एक धर्म, एक भाषा और एक-से सामाजिक संगठन पर, सारे देश में एक राष्ट्र की स्थापना का उद्योग करेगा, जिससे इस देश का साम्राज्य चिर-स्थायी रह सके। यद्यपि सारा आर्यावर्त्त अब एक साम्राज्य के अन्तर्गत है, परन्तु एक राष्ट्र का निर्माण मुझे अभी भी उतना ही दूर पर दीखता है जितना आज से अट्ठाईस वर्ष पूर्व था।)

अलका : **(कुछ सोचते हुए)** यह तो सत्य जान पड़ता है, महाराज्ञी ! परन्तु इसका क्या कारण है ?

राज्यश्री : मुख्य कारण एक ही है।

अलका : वह क्या ?

राज्यश्री : शिलादित्य और मुझे जो आशा थी कि साम्राज्य में समान अधिकार देने से समस्त देश के नरपतिगण उसमें स्वेच्छापूर्वक सम्मिलित होने के लिए आगे बढ़ेंगे, वह आशा पूर्ण न हुई। अतः शिलादित्य के पहले छः वर्ष तथा उसके पश्चात् का भी बहुत सा समय युद्ध और विप्लवों की शान्ति एवं अन्य राज्य-काज के झगड़ों में ही बीता। फिर जो नरपति साम्राज्य के अन्तर्गत आये हैं उनकी दृष्टि भी इस ओर न होकर अपना-अपना बल बढ़ाने की ओर ही है।

अलका : **(कुछ ठहरते और विचारते हुए)** तो जो व्यक्तिगत स्वार्थ

हर एक महान् कार्य के मार्ग में बाधक होता है वही आपके और महाराजाधिराज के शुभ-सकल्पों में भी बाधक हो रहा है।

राज्यश्री : हाँ, अलका, वही व्यक्तिगत स्वार्थ ! अनेक बार आज का-सा विचार मेरे मन उठता था, प्रत्येक युग के अन्त में, जब मैं युग-भर के कार्यों का सिंहावलोकन करती थी, तब यह विचार और भी प्रबल हो जाता था, परन्तु अभी तक मुझे युद्ध समाप्त होने की आशा थी। युद्धों की समाप्ति होते ही हम दोनों इसी एक कार्य में लग जायँगे, इसका भी विश्वास था। अभी वल्लभी की विजय के पश्चात् यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया था; परन्तु आज, जब से दक्षिणी भारत पर आक्रमण करने का निश्चय हुआ है, तब से मैं तो बहुत ही अशान्त और निराश हो गयी हूँ।

[नेपथ्य में दूरी पर गायन की ध्वनि सुन पड़ती है, परन्तु गायन दूरी पर होने के कारण समझ में नहीं आता।]

राज्यश्री : जयमाला गा रही है, अलका।

अलका : हाँ, सम्राज्ञी, आप उसे भी इस विद्या में दक्ष बना रही हैं।

राज्यश्री : **(कुछ ठहरकर)** अलका, मनुष्य के हृदय में सन्तान की कितनी इच्छा होती है ! ज्यों-ज्यों उसकी अवस्था बढ़ती जाती है त्यों-त्यों बाल-लीला देखने का उसके हृदय में कितना चाव होता जाता है ! विवाह न कर यौवन-सुखों के समस्त भोगों को तिलांजलि देने पर भी आठों पहर और चौसठ घड़ी प्रजा की सेवा में दत्तचित्त रहने पर भी, शिलादित्य इस सुख से वंचित रहने का साहस न कर सके। यदि वे स्वयं विवाह कर सन्तान का मुख देखने में असमर्थ रहे तो उन्होंने परायी पुत्री को ही अपनी पुत्री मानकर इस अपूर्व सुख को प्राप्त करने का प्रयत्न किया है।

अलका : **(कुछ ठहरकर सोचते हुए)** क्यों सम्राज्ञी, परमभट्टारक को सन्तान न होने के कारण क्या अब किसी प्रकार का दुःख रहता है ?

[शनैः-शनैः अब गायन की ध्वनि समीप आने लगती है।]

राज्यश्री : **(कुछ सोचते हुए)** यह कहना तो कठिन है अलका, क्योंकि इस सम्बन्ध में वे कभी कोई बात ही नहीं करते; परन्तु उनका

हृदय इतना महान् है कि उसमें कदाचित् अपने पराये का भेद-भाव ही नहीं है। जयमाला पर उनका उतना ही प्रेम है जितना अपनी निज की पुत्री पर हो सकता है।

[अब गायन की ध्वनि और भी समीप आती है।]

अलका : और आपका हृदय क्या कम महान् है, समाज्ञी ! आप भी तो जयमाला पर उतना ही स्नेह करती हैं जितना परमभट्टारक।।

[जयमाला का प्रवेश। वह लगभग १२ वर्ष की अत्यन्त सुन्दर गौर वर्ण की बालिका है। रुपहरी कौशेय की रेशमी साड़ी पहने है, तथा उसी प्रकार का वस्त्र वक्षःस्थल पर बाँधे है। श्वेत हीरे से जड़े हुए आभूषणों से उसके अंग-प्रत्यंग देदीप्यमान हैं। जयमाला गा रही है।]

कितना द्रव्य दिया भगवान् !
तुमने तो देने में रक्खा कभी न मितव्ययिता का ध्यान।
नित्य प्रात में कोसों तक तुम फैला देते कांचन-पत्र।
शुक्ल-शर्वरी-मध्य सतत ही छिटकाते चाँदी सर्वत्र।
निशा में नित अगणित हीरक,
चमकते द्यौ में दमक-दमक;
पयोधों में पन्ना-मानक,
दमकते नभ में चमक-चमक;
तृष्णा का तब भी अवसान,
मानव-मन से हुआ न तो तुम कर सकते क्या कृपानिधान ?
कितना द्रव्य दिया भगवान् !
सोने-चाँदी के निर्जीव—
टुकड़े औ' कंकड़-पत्थर के संग्रह में जग व्यग्र अतीव;
निर्धन तथा महा धनवान,
गुणी तथा सम्राट् महान्,
इसी कार्य में लगे हुए हैं धर्म-कर्म इसको ही मान।
लूटमार जो करते उसको नीति-युक्त कहते हा ! ज्ञान।।
कितना द्रव्य दिया भगवान् !

राज्यश्री : (**रूखी मुस्कराहट से**) जयमाला, आज तो तूने सचमुच गायन को इस प्रकार गाया जैसे तू गान-विद्या में पण्डिता हो गयी है। (**उसके मुख को ध्यानपूर्वक देखकर**) पर, यह तो बता, इतनी गम्भीर क्यों है?

[जयमाला खिलखिलाकर हँस पड़ती है और दौड़कर राज्यश्री से लिपट जाती है।]

राज्यश्री : (**उसका दृढ़ आलिंगन कर उसे अपने अत्यन्त सन्निकट शयन पर बिठाते हुए ठहरकर**) हाँ, तो तूने बताया नहीं कि तू इतनी गम्भीर क्यों थी?

जयमाला : तुम्हारा यह गायन ही ऐसा है, सम्राज्ञी, कि यह किसी को गम्भीर बना देगा। बिना गम्भीर हुए वह गाया ही नहीं जा सकता।

राज्यश्री : तो तू इस गायन का अर्थ भली भाँति समझती है?

जयमाला : बिना समझे कोई गम्भीर होकर गा सकता है?

राज्यश्री : (**कुछ ठहरकर फिर रूखी मुस्कराहट के साथ**) किन्तु, जयमाला, इस गायन को समझने और गम्भीरतापूर्वक गाने पर भी तो तू स्वयं सोने-चाँदी के निर्जीव टुकड़ों और कंकड़-पत्थर से अपने को सजाये हुए है।

[हर्ष का प्रवेश, उनकी अवस्था अब ४५ वर्ष की है। उनका शरीर लगभग उसी प्रकार का है जैसा पहले था, परन्तु मूँछें अब बड़ी हो गयी हैं। यद्यपि उनके मुख पर राज्यश्री के सदृश झुर्रियाँ नहीं हैं, तथापि मस्तक पर रेखाएँ पड़ गयी हैं। केश अभी भी काले हैं और अवस्था राज्यश्री से अधिक होने पर भी उससे कम दिख पड़ती है। वेश-भूषा पहले के समान ही है। हर्ष को देखते ही राज्यश्री, जयमाला और अलका तीनों खड़ी हो जाती हैं। जयमाला हर्ष से लिपट जाती है तथा हर्ष, राज्यश्री एवं जयमाला शयन पर बैठते हैं और अलका आसन्दी पर।]

हर्ष : कह जयमाला, अब तेरी गान-विद्या का क्या हाल है?

जयमाला : यह सम्राज्ञी से पूछिए, पिताजी!

राज्यश्री : यह तो अब मुझ से भी अच्छा गाने लगी है।

जयमाला : इनकी बातें ! इनकी बात न मानिएगा, पिताजी !

हर्ष : पर, अभी तूने ही कहा था न कि सम्राज्ञी से पूछो ?

जयमाला : पर, मैं यह थोड़े ही जानती थी कि सम्राज्ञी भी झूठ बोलेंगी।

[**हर्ष और अलका हँस देते हैं। राज्यश्री के मुख पर भी रूखी मुस्कराहट दिख पड़ती है।**]

हर्ष : (**राज्यश्री के मुख को ध्यानपूर्वक देखते हुए**) और राज्यश्री, तुम इतनी उदास क्यों दिखायी पड़ती हो, स्वास्थ्य तो अच्छा है ?

राज्यश्री : हाँ, हाँ, स्वास्थ्य अच्छा है।

हर्ष : फिर इतनी उदासी क्यों ? आज तो तुम्हारे राज्याभिषेक के सातवें युग की समाप्ति का उत्सव है। सारा आर्यावर्त्त हर्ष से हिलोरें ले रहा है। तुम्हारा मन तुम्हारे दुःख से तो व्यथित रहता ही है, यह मैं जानता हूँ, तभी तो देखो न, इस तेतालीस वर्ष की अवस्था में ही तुम वृद्धा के समान हो गई हो, परन्तु दूसरे के सुख में प्रसन्न रहने का भी तो तुम निरन्तर प्रयत्न करती हो।

राज्यश्री : आज मैं अपने व्यक्तिगत दुःख से दुःखित नहीं हूँ, शिलादित्य ?

हर्ष : फिर ?

राज्यश्री : वही पुराना एक राष्ट्र की स्थापना वाला प्रश्न व्यथित कर रहा है।

हर्ष : (**लम्बी साँस लेकर**) ओह !

राज्यश्री : अब शिलादित्य, मैं इस सम्बन्ध में निराश हो चली हूँ।

हर्ष : यह क्यों ?

राज्यश्री : इन नित्य-प्रति के युद्धों के कारण कदाचित् हमें उसके लिए यथेष्ट प्रयत्न करने का समय ही न मिलेगा।

हर्ष : तुम जानती हो हो कि व्यर्थ के रक्तपात का मैं भी विरोधी हूँ, परन्तु क्या किया जाय, विवशता है।

राज्यश्री : परन्तु यदि दक्षिण पर आक्रमण न कर हम लोग पहले

केवल आर्यावर्त्त में ही एक राष्ट्र के संगठन का प्रयत्न करें तो क्या उचित न होगा ?

हर्ष : मैं भी इस विषय को सोचता रहा हूँ और तुम जानती हो कि दक्षिण पर आक्रमण करने का विचार भी मैंने बहुत दिनों तक स्थगित रखा; परन्तु पुलकेशिन का मालव, गुर्जर और कलिंग पर आक्रमण तो दक्षिण के आक्रमण को अनिवार्य कर देता है। यदि हम दक्षिण पर आक्रमण न करेंगे तो कदाचित् उनका आक्रमण हम पर हो जाय। इसलिए एकाएक मैंने यह निर्णय किया है।

राज्यश्री : **(लम्बी साँस लेकर)** तब कदाचित् एक राष्ट्र के निर्माण का कार्य हमारे हाथ से होना ही नहीं है।

हर्ष : **(कुछ ठहरकर सोचते हुए)** राज्यश्री, मैं बड़ा आशावादी मनुष्य हूँ। यद्यपि गत अट्ठाईस वर्षों में हम इस कार्य को यथेष्ट रूप में नहीं कर सके हैं; परन्तु अभी भी मेरे हृदय में इसी का सबसे प्रधान स्थान है। अब तक जो कार्य हुआ है वह भी एक प्रकार से इस कार्य में सहायक ही होगा। बिना आर्यावर्त में एक साम्राज्य की स्थापना के यह कार्य होता भी कैसे ? विशेषकर शिक्षा के प्रचार में जो वृद्धि हुई है, तथा शिक्षा जिस प्रणाली से दी जा रही है, उसमें भावी सन्तति इसी विचार के अनुकूल बनेगी। फिर इस दशा में कुछ भी कार्य नहीं हो रहा है, यह बात भी नहीं है। अब दक्षिण भारत के भी साम्राज्य में सम्मिलित होने पर इस कार्य के लिए और अधिक साधन हो जायँगे। आशा करता हूँ कि दक्षिण के युद्ध से निवृत्त होकर हम इस कार्य को पूर्ण रूप से हाथ में ले सकेंगे।

[जयमाला, जो अब तक चुपचाप एक-एक कर अपने सब आभूषण उतार रही थी, एकाएक सबको पृथ्वी पर फेंक देती है। उसके शब्द से सब चौंक पड़ते हैं।]

हर्ष : **(फेंके हुए आभूषणों को देखते हुए)** यह क्या हुआ ?

राज्यश्री : **(कुछ ठहरकर उसी प्रकार मुस्कराते हुए)** कुछ नहीं; मैंने

यों ही हँसी में कुछ कह दिया था, इसलिए ये आभूषण फेंके गये हैं।

हर्ष : (जयमाला से) क्यों जयमाला, सम्राज्ञी से अप्रसन्न हो गयी हो ?

जयमाला : सम्राज्ञी से अप्रसन्न ! वाह, पिताजी, वे तो मुझ पर आप से भी अधिक प्रेम करती हैं, परन्तु अब मैं सोने-चाँदी के निर्जीव टुकड़ों और कंकड़-पत्थरों से अपने को नहीं सजाऊँगी।

[नेपथ्य में पंचमहावाद्य बजते हैं। और इन्हें सुनकर चारों हाथ बाँधकर खड़े हो जाते हैं।]

हर्ष : (वाद्य बन्द होने पर) अलका, जयमाला पागल हो गयी है। आभूषणों को उठा लो। इसे समझाना पड़ेगा तब यह समझेगी।

राज्यश्री : सायंकाल के पंचमहावाद्य बज चुके। शरत्काल का समय है। शीत बढ़ रहा है। हम लोग कक्ष में न चलें !

हर्ष : हाँ, हाँ, चलो !

[हर्ष, राज्यश्री और जयमाला तीनों का प्रस्थान। अलका आभूषण उठाकर जाती है, पीछे-पीछे दासी भी। दासी दो दासियों के संग, जिनकी वेश-भूषा उसी के समान है, पुनः लौट कर आती है। दो दासियाँ शयन तथा एक आसन्दी को उठाकर ले जाती है। परदा गिरता है।]

दूसरा दृश्य

स्थान : माधवगुप्त के प्रासाद का कक्ष

समय : तीसरा पहर

[कक्ष की बनावट वैसी ही है जैसी पहले अंक के पहले दृश्य के कक्ष की थी। तीनों भित्तियों में दो-दो द्वार हैं जो अन्य कक्षों में खुलते है और इनसे अन्य कक्षों के थोड़े-थोड़े भाग दिखाई देते हैं। कक्ष की छत, भित्तियों आदि का रंग पहले अंक के कक्ष से भिन्न है। कक्ष में अनेक काष्ठ की आसन्दियाँ रखी हैं; जिन पर गद्दे-तकिये लगे हैं। बाँयी ओर की भित्ति के निकट रखी हुई आसन्दी पर, हर्ष का एक बड़ा-सा चित्र रखा है। चित्र पर पुष्पहार चढ़ा हुआ है। दाहिनी ओर की भित्ति के निकट चित्र की ओर मुख किये हुए आदित्यसेन खड़ा है। आदित्यसेन की अवस्था लगभग २० वर्ष की है। वह गौर वर्ण तथा गठीले शरीर का ऊँचा-पूरा सुन्दर युवक है। श्वेत रंग और सुनहरी किनारे के उत्तरीय और अधोवस्त्र एवं आभूषण धारण किये है। रेख निकल रही हैं और सिर पर लम्बे केश हैं। मुख पर तेज और नेत्रों में कान्ति है। उसके हाथों में धनुष है, जिस पर बाण चढ़ा है। वह चित्र पर बाण चलाने वाला है। अतः चित्र की ओर एकटक देख रहा है। बाँयीं ओर के द्वार से शैलबाला का प्रवेश। शैलबाला की अवस्था ४५ वर्ष की है। वह गौर वर्ण की, शरीर में कुछ स्थूल, सुन्दर स्त्री है। कौशेय की रंगीन साड़ी पहने है और वैसा ही वस्त्र वक्षःस्थल पर बाँधे है आभूषण रत्नजटित हैं]

शैलबाला : (आदित्यसेन को बाण चलाने पर उद्यत देख शीघ्रता से बढ़ते हुए) हैं! हैं! आदित्य, यह क्या करने वाला है, यह क्या करने वाला है? तेरी उद्दण्डता तो नित्य-प्रति बढ़ती ही जाती है!

आदित्यसेन : (धनुष की ज्या को ढीला करते हुए) कहाँ तक क्रोध को रोकूँ माँ, कहाँ तक क्रोध को रोकूँ? पिताजी की दासत्व-प्रवृत्ति

तो सीमा लाँघ रही है। अपने पूर्वजों की सारी प्रतिष्ठा, सारी मान-मर्यादा को एक ओर रख गुप्तों के कट्टर शत्रु हर्षवर्द्धन की मित्रता के नाम पर वे वर्द्धनों के केवल आश्रित बने हैं: इतना ही नहीं, पर अब तो उन्होंने हर्ष का प्रतिमा-पूजन भी आरम्भ किया है। कहाँ तक क्रोध को रोकूँ माँ, कहाँ तक क्रोध को रोकूँ !

शैलबाला : (**आगे बढ़कर आदित्यसेन से धनुष लेते हुए**) पर बेटा यह पुष्प-माला तो इस चित्र पर तेरे पिता ने नहीं, मैंने चढ़ाई है। परमभट्टारक के गुण ही ऐसे है कि उनका पूजन करने को हृदय आप-से-आप उत्कण्ठित हो उठता है।

आदित्यसेन : (**घृणा से हँसकर**) माँ, तेरे हृदय में भी ऐसी भावनाओं की उत्पत्ति दासत्व-वृत्ति की जीती-जागती मूर्ति है। गुप्त-वंश के अधःपतन की चरम सीमा है। (नरों के पतन को रोकने की क्षमता नारियाँ ही रखती है, परन्तु यदि उनका भी पतन हो जाय तब तो उत्थान की संभावना ही नहीं रह जाती)। माँ, मेरे बाल्य-काल में तो तेरे हृदय में ऐसी भावनाएँ न थीं। मेरे सामने परम-भट्टारक महाराजाधिराज समुद्रगुप्त, परमभट्टारक माहाराजा-धिराज चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की कीर्ति के न जाने कितने गीत तू गाया करती थी, उनके यश से भरी न जाने कितनी गाथायें तू सुनाया करती थी; अब क्या तेरे हृदय पर भी पिताजी के सदृश दासता का साम्राज्य हो गया है ?

शैलबाला : तू तो आज बहुत उत्तेजित हो रहा है, बेटा; चल, बैठ तो ! क्या तू यह समझा है कि परम प्रतापी गुप्त-सम्राट् के प्रति अब मेरो भक्ति नहीं रह गई है ?

[दोनों आसन्दियों पर बैठ जाते हैं। आदित्यसेन अपने धनुष पर चढ़े हुए बाण को उतार कर तरकस में रख धनुष आसन्दी से टिकाकर रख देता है।]

आदित्यसेन : कहाँ रह गयी है ? मुझे तो वह लवलेशमात्र भी नहीं दिखाई देती। यदि पूर्वजों के प्रति तेरी भक्ति होती तो तू उस हर्ष के चित्र पर पुष्प-माला चढ़ा सकती थी, जिसके पिता ने

हमारे पूर्वजों को परास्त किया, जिसके भाई राजवर्द्धन ने हमारे पितृव्य मालवेश देवगुप्त का वध किया, जिस राजवर्द्धन के कारण हमारे पितृव्य कुमारगुप्त का वध हुआ, जिस हर्ष ने हमारे पितृव्य गौड़ेश शशांक नरेन्द्रगुप्त को अपना माण्डलिक और पूज्य पिताजी को अपना दास बना रखा है ?

शैलबाला : (**आदित्यसेन की पीठ को थपथपाते हुए**) बेटा, युवावस्था की उत्तेजना के कारण ही तू मुझ से ऐसी बात कह रहा है। मेरे कक्ष में, तुझे पूज्यपाद परमभट्टारक महाराजाधिराज समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त-विक्रमादित्य और स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य के चित्रों पर भी इसी प्रकार की पुष्प-मालाएँ चढ़ी हुई नहीं दिखतीं क्या ? आज परमभट्टारक महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन का चित्र बनकर आया, मैंने इस पर भी माला चढ़ा दी ! हमारे पूर्वज महापुरुष थे और परमभट्टारक महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन भी, चाहे इन्होंने हमारे कुल के कुछ आततायियों को दण्ड दिया हो, महापुरुष हैं। मैंने उनके साथ ही, इनका भी पूजन कर दिया, तो बुरी बात क्या हुई ?

आदित्यसेन : आह ! माँ, आह ! माँ, यही तो तू समझती नहीं, यही तो तू समझती नहीं ?

शैलबाला : क्या नहीं समझती ?

आदित्यसेन : मैं तुझे कदाचित् पूर्णरूप से समझा न सकूँ, पर स्वयं समझ सकता हूँ।

शैलबाला : क्या समझ सकता है ?

आदित्यसेन : यह कि हम लोग गुप्त लोग—समझी—हम लोग—गुप्त लोग···

शैलबाला : हाँ हम लोग, गुप्त लोग, पर, हम लोग गुप्त लोग क्या ?

आदित्यसेन : हम गुप्त लोग जिस प्रकार गुप्त-सम्राटों का पूजन कर सकते हैं उस प्रकार वर्द्धन-सम्राटों का नहीं ?

शैलबाला : यह भेद-भाव क्यों ? सभी महापुरुष पूजनीय हैं।

आदित्यसेन : नहीं, कदापि नहीं, सभी पूजनीय नहीं हो सकते। कुछ के

पूजन से हमारा उत्कर्ष होता है और कुछ के पूजन से हमारा पतन। यदि पिताजी ने परमभट्टारक महाराजाधिराज समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य और स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य के संग ही हर्ष का भी पूजन नहीं किया होता, तो वे समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त और स्कन्दगुप्त के समान होते, वर्तमान माधवगुप्त के समान नहीं।

शैलबाला : बेटा, महापुरुष जन्म से ही होते हैं, पूर्वजों का पूजन और अन्यों की घृणा से कोई महापुरुष नहीं होता।

आदित्यसेन : केवल पूर्वजों के पूजन से कोई महापुरुष नहीं होता, यह मैं भी मानता हूँ; परन्तु उसी के साथ अन्यों का पूजन महापुरुष होने में सबसे बड़ी बाधा है। इसमें भी मुझे सन्देह नहीं। पिताजी में क्या नहीं है। वे बुद्धिमान हैं, बलवान हैं। सभी कुछ हैं परन्तु उनकी बुद्धि, उनका बल अन्यों की सेवा में जाता है और इस सेवा का फल क्या है? तू तो प्रासादों में रहती है माँ, तू जन-समुदायों में कहां विचरण करती है? मैं जानता हूँ कि जन-समुदाय उन्हें कैसा समझता है?

शैलबाला : कैसा, बेटा?

आदित्यसेन : कई बार तुझ से कहा होगा और फिर कहता हूँ—हर्षवर्द्धन का क्रीतदास! किसी महान् वंश में जन्म लेकर महापुरुषों की सन्तति होकर अन्य किसी की सेवा से अधिक निकृष्ट कार्य कदाचित् और कोई नहीं है। फिर अन्य भी कैसे? जिनसे हमारे वंश का नाश तथा हमारी कीर्ति का ह्रास हुआ है और इस वंश-नाश एवं कीर्ति-ह्रास में पिताजी का पूर्ण सहयोग होते हुए भी वर्द्धनों के प्रधान कर्मचारीगण उन्हें अविश्वास की दृष्टि से देखते हैं। परम प्रतापी गुप्तवंश के वंशजों की यह अवस्था, अधःपतन! दुःख की पराकाष्ठा है! **(पुनः अपना धनुष संभालते हुए)** माँ, हमारा उत्थान इन वर्द्धनों के पतन पर अवलम्बित है। हमारा उत्कर्ष हर्षवर्द्धन की सेवा से सम्भव नहीं, परन्तु उसके नाश से ही हो सकता है। पिताजी ने यह सेवा-वृत्ति ग्रहण कर जो पाप किया है, उसका प्रायश्चित्त मैं करूँगा **(खड़े होकर बायें हाथ में धनुष**

लिए तथा दाहिना हाथ शैलबाला के पैरों पर रखकर) माँ, तेरे चरणों की शपथ लेकर, तेरा यह पुत्र आदित्यसेन आज यह प्रतिज्ञा करता है कि वर्द्धन-सत्ता का अन्त कर मैं फिर आर्यावर्त्त में गुप्तसाम्राज्य की स्थापना--------

शैलबाला : (बीच में शीघ्रता से) बेटा···बेटा तू क्या कहता है ? यदि तेरे पिता आगये और उन्होंने सुन लिया तो फिर कलह···

[माधवगुप्त का प्रवेश। उसकी अवस्था अब ५० वर्ष की है। यद्यपि, उसका शरीर और वेश-भूषा वैसी ही है, तथापि दाढ़ी के कारण मुख में परिवर्तन दिखाई देता है। सिर और दाढ़ी-मूँछों के बाल कहीं-कहीं श्वेत हो गए हैं। मस्तक पर रेखायें और नेत्रों के दोनों कोनों पर कुछ झुर्रियाँ दिखाई देती हैं। माधवगुप्त को देखते ही आदित्यसेन चुप हो जाता है। शैलबाला घबराकर खड़ी हो जाती है।]

माधवगुप्त : मेरे पाप का प्रायश्चित्त करेगा ! गुप्त-वंश का यह सपूत अपने कपूत पिता के पाप का प्रायश्चित्त करेगा; आज तो तूने उद्दण्डता की पराकाष्ठा ही कर दी, आदित्य !

[माधवगुप्त गम्भीर मुद्रा से उपर्युक्त वाक्य कह एक आसन्दी पर बैठ जाता है। शैलबाला अपना सिर झुका लेती है। आदित्यसेन उसी प्रकार खड़ा रहता है। कक्ष में कुछ देर को सन्नाटा छाया रहता है।]

माधवगुप्त: (आदित्यसेन से) बेटा, बैठ जा और चौथेपन को प्राप्त होने वाले अपने पिता की आज अन्तिम बार कुछ स्पष्ट बातें सुन ले ! शैलबाला, तुम भी बैठ जाओ !

[बिना एक शब्द भी कहे आदित्यसेन और शैलबाला एक-एक आसन्दी पर बैठ जाते हैं। फिर कुछ देर को निस्तब्धता छा जाती है।]

माधवगुप्त : (एक लम्बी साँस लेकर) बेटा, यद्यपि इसके पूर्व भी इस विषय पर तेरा और मेरा कई बार वाद-विवाद हो चुका है, पर आज मैं तुझे इस विषय को दार्शनिक दृष्टि से समझाना चाहता हूँ।

आदित्यसेन : जो आज्ञा पिताजी !

माधवगुप्त : देख, बेटा, एक ही वाक्य में कहे देता हूँ—अपने कुल का गर्व, अपने बान्धवों से सहानुभूति बुरी बातें नहीं हैं, परन्तु इन भावनाओं के कारण यदि अन्य कुल वालों से ईर्ष्या की उत्पत्ति हो और इस ईर्ष्या से अन्धे होने के कारण यदि अन्यों के न्याययुक्त कार्य भी अन्यायपूर्ण दीखें तो यह कुल-गर्व एवं बान्धव-सहानुभूति न अपने लिए कल्याणकारी हो सकती है और न किसी दूसरे के लिए।

[आदित्यसेन घृणा से मुस्करा देता है।]

माधवगुप्त : **(आदित्यसेन की मुस्कराहट को ध्यानपूर्वक देखकर)** जान पड़ता है वर्द्धनों के प्रति ईर्ष्या का तेरे हृदय पर ऐसा प्रभाव हो गया है, कि किसी निष्पक्ष बात को भी तू सुनने के लिए तैयार नहीं है।

आदित्यसेन : स्पष्टवादिता के लिये क्षमा कीजिए पिताजी, परन्तु स्पष्ट तो कहूँगा ही।

माधवगुप्त : अवश्य !

आदित्यसेन : इस निष्पक्षता की दुहाई आज ही आपने दी हो, यह नहीं, आप सदा ही इसकी दुहाई दिया करते हैं। आज मैं यह जानना चाहता हूँ कि हर्ष के पिता ने किस निष्पक्षता के सिद्धान्तानुसार आपके पूज्य पिताजी पर आक्रमण कर उन्हें माण्डलिक बनाया था? किस निष्पक्षता के सिद्धान्त पर उन्होंने आपको और पितृव्य कुमारगुप्त को यहाँ लाकर दासत्व की इन शृंखलाओं में जकड़ा था?

माधवगुप्त : परन्तु, इसके लिए हर्ष उत्तरदायी नहीं है।

आदित्यसेन : वे चाहे उत्तरदायी न हों, पर वर्द्धन-वंश अवश्य उत्तरदायी है, जिसके वे उत्तराधिकारी हैं।

माधवगुप्त : पर, इस प्रकार तो गुप्त-वंश ने भी अनेक राज्यों पर आक्रमण किया था, अनेकों को पराजित कर माण्डलिक बनाया था; यदि वर्द्धन वंश का यह कार्य अनुचित है तो गुप्त-वंश का भी था।

आदित्यसेन : मैं इसके औचित्य और अनौचित्य की चर्चा नहीं कर रहा हूँ, मैं तो केवल यह सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहा हूँ, कि निष्पक्षता की दृष्टि से संसार में कोई बात देखी ही नहीं जा सकती। आपकी कृपा से इस छोटी-सी अवस्था में भी मुझे भूत और वर्तमान दोनों का यथेष्ट अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। और, मैं तो इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि यह संसार बुद्धिमानों और बलवानों के लिए है। जिनमें बुद्धि है, जिनमें बल है, वे दूसरों पर अत्याचार कर सकते हैं; उनका अत्याचार, पक्षपात तथा स्वार्थपूर्ण होते हुए भी, संसार न्यायपूर्ण मानता है। पिताजी, मैं तो इस संसार में महत्त्वाकांक्षा से अधिक महत्त्वशाली और सफलता से अधिक सफल वस्तु और कोई है, यह मानता ही नहीं। महत्त्वाकांक्षा से भरा हुआ व्यक्ति जीवन-संग्राम में जब सफलता प्राप्त कर लेता है तब वह महापुरुष-पद को प्राप्त करता है। संसार उसी का अनुसरण करता है, और चाहे इने-गिने व्यक्ति उसे बुरा कहें, पर जन-समुदाय उसी का पूजन करता है। सारे संसार के इतिहास में जिन्हें महापुरुष-पद प्राप्त है वे सब इसी कोटि के हैं। निष्पक्षता और निःस्वार्थता ढकोसला है—विडम्बना है!

माधवगुप्त : और इसी महत्त्वाकांक्षा के वशीभूत होकर वर्द्धन-सत्ता को उलटने में सफलता प्राप्त करना तेरा अन्तिम निर्णय है?

आदित्यसेन : **(दृढ़ता से)** सर्वथा अन्तिम!

शैलबाला : **(घबराकर)** बेटा, बेटा!…

माधवगुप्त : **(बीच ही में)** हर्षवर्धन की निःस्वार्थ प्रजा-सेवा, उनसे तेरे पिता की मैत्री, ये बातें भी तेरे इस निर्णय में कोई बाधा नहीं पहुँचातीं?

आदित्यसेन : **(और दृढ़ता से)** लेशमात्र भी नहीं, पिताजी!

शैलबाला : **(और भी घबराहट से)** ओह! ओह!

माधवगुप्त : तू जानता है कि ऐसी परिस्थिति में मेरा क्या कर्त्तव्य हो जाता है?

आदित्यसेन : (घृणा-भरे स्वर में) बहुत काल से जानता हूँ। वर्द्धनों की दासता ने आपको अपने बन्धु शशांक नरेन्द्रगुप्त की स्वाधीनता हरण करने के लिए बाध्य किया, वही पुत्र की स्वाधीनता हरण करने के लिए बाध्य करेगी।

माधवगुप्त : (उत्तेजना-भरे स्वर में) वर्द्धनों की दासता नहीं, कदापि नहीं। हर्षवर्धन का साथ देने के लिए मेरी अन्तरात्मा मुझे प्रोत्साहन देती है, हर्षवर्धन की न्यायपरायणता एवं उनके सच्चे स्नेह तथा शशांक नरेन्द्रगुप्त के अत्याचार एवं उसके विश्वासघात के कारण! तेरी स्वतन्त्रता का यदि अपहरण होगा तो उसका कारण होगा तेरी उद्दण्डता और बार बार मेरी सम्मति की उपेक्षा।

आदित्यसेन : (अत्यन्त दृढ़ता से) मैं इसके लिए तैयार हूँ, पिताजी!

शैलबाला : (बहुत ही घबराकर खड़े होते हुए) यह क्या, यह क्या हो रहा है! **(माधवगुप्त की ओर देखकर गिड़गिड़ाते हुए)** क्या कर रहे हैं, नाथ आप! **(आदित्यसेन की ओर देखकर गिड़गिड़ाते हुए)** और क्या कहता है, बेटा तू! पिता पुत्र की स्वतन्त्रता का अपहरण करेगा और पुत्र पिता की आज्ञा का उल्लंघन!

आदित्यसेन : (रूखे स्वर से) यह कर्त्तव्य-क्षेत्र है, माँ; जिसे पिताजी अपना कर्त्तव्य समझते हैं उसे वे और जिसे मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, उसे मैं करूँगा।

शैलबाला : (जल्दी-जल्दी) (यह कैसा कर्त्तव्य-क्षेत्र है? कर्त्तव्य-क्षेत्र में क्या हृदय को स्थान नहीं है? क्या यह क्षेत्र हृदयहीनता से ही भरा हुआ है?) **(माधवगुप्त से)** नाथ, क्या पुत्र के लिए पिता के हृदय में माता के हृदय का-सा स्नेह नहीं रहता? आदित्य की बाल्यावस्था में तो यह नहीं जान पड़ता था। उस समय तो नाथ, इसकी एक-एक मुस्कान पर, इसकी एक-एक बाल-क्रीड़ा पर आप सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार रहते थे, क्या इसके युवा होते ही सारा स्नेह काफूर हो गया! आज-

कल तो नित्य-प्रति इसी प्रकार का कोई न कोई प्रसंग उपस्थित रहता है। आपका पुत्र, आपके प्राणों से प्यारा पुत्र, आपके द्वारा ही बन्दी बनाया जावे, आपके द्वारा ही परतन्त्र किया जाये, पिता पुत्र को कारावास भिजवाये, यह सब क्या है! यह सब क्या है, नाथ!

[शैलबाला मूर्च्छित होकर गिरने लगती है। माधवगुप्त दौड़कर उसे सँभालता है। आदित्यसेन घृणापूर्ण दृष्टि से माधवगुप्त की ओर देखता है। माधवगुप्त ऐसी दृष्टि से, जिसमें किसी प्रकार का भाव नहीं है, पहले आदित्यसेन की ओर, फिर तत्काल उसे हटाकर सामने की ओर देखने लगता और एक लम्बी साँस छोड़ता है।

[परदा गिरता है।]

तीसरा दृश्य

समय : सन्ध्या

स्थान : कर्णसुवर्ण में शशांक नरेन्द्रगुप्त के प्रासाद का दालान

[वही दालान है जो दूसरे अंक के पहले दृश्य में था। शशांक का शीघ्रता से प्रवेश। उसकी अवस्था अब ६५ वर्ष की है। केश लगभग श्वेत हो गये हैं। मस्तक और नेत्रों के चारों ओर झुरियाँ दिखायी देती हैं परन्तु, शरीर वैसा ही हृष्ट-पुष्ट है, जैसा ३० वर्ष पूर्व था। वेश-भूषा पहले के समान है। उसके पीछे-पीछे गुप्तचरों का वही अधिपति आता है, जो दूसरे अंक के पहले दृश्य में आया था। उसकी अवस्था अब ६० वर्ष के ऊपर है और उसके केश भी श्वेत हो गये हैं। उसकी वेश-भूषा भी पहले के समान है। इन दोनों के पीछे दो दास शयन और एक आसन्दी लिये हुए आते हैं और इनके पीछे एक दासी हाथ में चन्दन की डण्डी वाला खस का व्यंजन। डण्डी पर श्वेत हाथी-दाँत का काम है।]

शशांक : (उत्तेजित स्वर में) हाँ, यहाँ कहो, यह सुख-संवाद यहाँ कहो! ग्रीष्म में कक्ष इतना तप्त और उसके कारण रुधिर का तापमान भी इतना ऊँचा हो गया था कि यह शुभ-संवाद कक्ष में ही सुन मैं उसे ऊँचा करने का साहस न कर सकता था। सात युग, सात युग से भी अधिक समय पश्चात् इतना दीर्घ काल, विचार-ही-विचार में खो देने के पश्चात् यह शुभ संवाद सुना है, हर्ष की पुलकेशिन से पराजय! शशांक उसी शरीर के रहते, उन्हीं कानों से यह संवाद सुन रहा है न? मिथ्या समाचार तो नहीं है? कहीं दूसरा समाचार तो न पहुँच जायगा जो इस समाचार का खण्डन कर देगा? सत्य, पूर्ण रूप से सत्य संवाद है न, कि पुलकेशिन ने हर्ष को हरा दिया? **(समीप के रखे हुए शयन पर बैठते हुए)** कहो, कहो, मुझे ब्यौरेवार, ब्यौरेवार बताओ! हर्ष की

दक्षिण की इस हार का पूरा वृत्तान्त वर्णन करो, और बैठ जाओ, गुप्तचराधिपति, क्योंकि वह तो बड़ा लम्बा वर्णन होगा न, बहुत लम्बा !

गुप्तचरों का अधिपति आसन्दी पर बैठ जाता है। शयन और आसन्दी लाने वाले दास शयन और आसन्दी रखकर चले गये हैं। दासी शशांक पर व्यंजन डुलाने लगी है।]

गुप्तचराधिपति : पूरा और ब्यौरेवार वृत्तान्त तो अभी ज्ञात नहीं है, परमभट्टारक, परन्तु इस समाचार के सत्य होने में सन्देह नहीं है कि हर्ष ने पुलकेशिन से भारी हार खायी है। साथ ही, इस समाचार का खण्डन करने के लिए समाचार अब आ भी नहीं सकता, क्योंकि हर्ष सेना-सहित उत्तरापथ को लौट रहे हैं।

शशांक : तो अब कम से कम इतना तो निश्चित है कि हर्ष को पुलकेशिन पर विजय प्राप्त नहीं हो सकती ?

गुप्तचराधिपति : इस युद्ध में तो नहीं महाराजाधिराज; यदि यही सम्भव होता तो वे दक्षिणापथ से लौटते ही क्यों ?

[शशांक चुप होकर, विचारमग्न हो जाता है। कुछ देर तक निस्तब्धता छायी रहती है।]

शशांक : (शान्त होते हुए) देखो गुप्तचराधिपति, मैं सदा यह सोचा करता था कि मैं हृदय से नहीं, किन्तु मस्तिष्क से शासित होता हूँ परन्तु मैं देखता हूँ कि आज के इस संवाद ने मुझे हृदय से शासित करा दिया। मुझे सबसे अधिक हर्ष इस कारण हुआ है कि आज भी आर्य-धर्म की विजय सम्भव है, अभी भी बौद्ध-धर्म की जड़ इस देश से उखाड़ी जा सकती है। हर्ष इस पराजय से निर्बल हो जायगा। कदाचित् विद्रोह (**रुक जाता है, फिर शान्त होते हुए**) ओह ! ओह ! अभी भी मेरा मस्तिष्क अपने ठीक स्थान पर नहीं आया दीखता।

[प्रतिहारी का प्रवेश।]

प्रतिहारी : (अभिवादन कर) जय हो परमभट्टारक ! कान्यकुब्ज के जो ब्राह्मण यहाँ निवास करते है, वे श्रीमान् के दर्शन करना

चाहते हैं।

शशांक : **(गुप्तचराधिपति से)** अच्छा, तो तुम इस समय जा सकते हो। हर्ष की दक्षिण की पराजय का ब्यौरेवार समाचार ज्ञात होते ही मेरे सम्मुख उपस्थित करना।

गुप्तचराधिपति : (खड़े होते हुए) जो आज्ञा! **(अभिवादन कर प्रस्थान।)**

शशांक : **(प्रतिहारी से)** ब्राह्मणों को उपस्थित करो और दासों को आज्ञा दो कि यहाँ कुछ और आसन्दियाँ रख दें।

प्रतिहारी : जो आज्ञा! **(अभिवादन कर प्रस्थान)।**

[शशांक कुछ देर विचारमग्न बैठा रहता है। फिर एकाएक खड़ा हो धीरे-धीरे टहलने लगता है। कुछ ही देर में टहलने की गति तीव्र हो जाती है और इसी के साथ वह दोनों हाथों को मलने लगता है। धीरे-धीरे टहलने की गति फिर धीमी हो जाती है और वह अनेक बार दीर्घ निःश्वास छोड़ता है। दास तीन आसन्दियाँ लाकर रखते हैं। तीन ब्राह्मणों का प्रवेश। ये ब्राह्मण, राज्यश्री के अभिषेक के समय जिन पाँच ब्राह्मणों ने कान्यकुब्ज को उलट देने के लिए संगठन किया था, उन्हीं में से हैं। ये भी अब वृद्ध हो गये हैं। सबके केश श्वेत हैं और मुख तथा शरीर पर झुर्रियाँ पड़ गयी हैं।]

शशांक : **(ब्राह्मणों का अभिवादन कर)** आइये, पधारिये ब्रह्मदेव!

[शशांक शयन पर और तीनों ब्राह्मण शशांक को आशीर्वाद दे तीनों आसन्दियों पर बैठते हैं।]

एक ब्राह्मण : परमभट्टारक, आज हम लोग आपसे अपने देश को लौटने की आज्ञा लेने आये हैं।

शशांक : यह क्यों, देव, क्या मुझ से कोई अपराध हो गया है?

पहला : नहीं परमभट्टारक, परन्तु हम लोग जिस कार्य के लिये यहाँ आये थे और जिस कार्य के लिये हम लोगों ने यहाँ इतने दीर्घ काल तक निवास किया, उसकी सफलता की अब कोई आशा नहीं है। इस चौथेपन में अब हम लोग काशीवास करना चाहते हैं। हमारा इहलोक बिगड़ ही गया परमभट्टारक, धर्म की हमारे द्वारा कोई

सेवा न हो सकी। हम में से दो के प्राण भी यहीं गये और उनका परलोक भी बिगड़ा। अब हम तीनों काशीवास कर, भगवती भागीरथी के तट पर ही शरीर छोड़ना चाहते हैं, नहीं तो हमारा परलोक भी बिगड़ेगा।

शशांक : आप जानते हैं, आर्य, कि आपके और मेरे जीवन के उद्देश्य में कोई अन्तर नहीं है। जिस धर्म की सेवा आप चाहते हैं उसी की मैं भी। यही विषय इस दीर्घ काल तक मेरी भी दिवस की चिन्ता और रात्रि का स्वप्न रहा है। परन्तु प्रभो, मैं हृदय से नहीं, मस्तिष्क से शासित होता हूँ। अब तक इस कार्य का अवसर ही नहीं आया था; भगवान् की कृपा से जब यह अवसर आया, तब आप प्रस्थान किया चाहते है।

पहला : परन्तु यह तो आपने न जाने कितनी बार कहा कि शीघ्र ही अवसर आने की सम्भावना है।

शशांक : परन्तु अब तो सम्भावना की बात नहीं है, आर्य, अवसर आ ही गया।

पहला : (**उत्कण्ठा से**) किस प्रकार, महाराजाधिराज ?

शशांक : दक्षिण-युद्ध में हर्ष की पराजय हुई है। वह हारकर ससैन्य उत्तरापथ को लौटा है। अब तक सर्वत्र उसकी जय हीं सुन पड़ती थी, यह उसकी पहली पराजय है। नीति कहती है कि शत्रु पर निर्बलता के अवसर पर आक्रमण किया जाय। मैंने आपसे कहा न कि मैं हृदय से नहीं, मस्तिष्क से शासित होता हूँ। अब हर्ष के विरुद्ध विद्रोह का ठीक अवसर आ गया है, उसके निधन-कार्य का भी ठीक समय उपस्थित हुआ है। अब बौद्ध-धर्म के मूलोच्छेदन और आर्य-धर्म की नींव दृढ़ करने का समय भी आ गया है। इतने वर्षों और युगों तक जिस घड़ी की प्रतीक्षा की, सौभाग्य से वह अब आ गयी है। अब हमें निराश होने की आवश्यकता ही नहीं है, देव ! चलिए, वृद्ध पितृव्य यशोधावलदेव के पास चलें, उन्हें हर्ष की पराजय का यह समाचार सुनावें और भावी कार्यक्रम निश्चित करें। आप कान्यकुब्ज से जितने परिचित हैं, हम लोग नहीं। अतः

सारे कार्यक्रम का निर्णय आपकी सम्मति से ही होगा। मैं तो यह संवाद सुनते ही आपको बुलानेवाला था, पर आप आ ही गये। अब धर्म के उद्धार में विलम्ब नहीं दीखता, सर्वथा नहीं; प्रभो! (खड़ा होता है।)

पहला : (खड़े होते हुए) धन्य हमारा भाग्य!

दूसरा : (खड़े होते हुए) अन्त में धर्म की जय निश्चित ही है!

तीसरा : (खड़े होते हुए) इसमें कोई सन्देह नहीं है!

शशांक : हो ही नहीं सकता, हो ही नहीं सकता, आर्य!

[तीनों ब्राह्मणों के साथ शशांक का प्रस्थान। दासी दूसरी ओर जाती है और पाँच दासों के साथ पुनः आती है। दो दास शयन को और शेष तीन आसन्दियों को उठकार ले जाते हैं। परदा गिरता है।]

चौथा दृश्य

स्थान : कान्यकुब्ज नगर का मुख्य चतुष्पथ

समय : सायंकाल

[बीच में संगमरमर का चबूतरा बना है और इस चबूतरे के पीछे एक, और दोनों ओर दो मार्ग हैं। मार्ग बहुत चौड़े नहीं हैं। तीनों ओर के मार्गों का छोर नहीं दीखता। मार्गों के दोनों ओर गृहों की पंक्तियाँ हैं। निकट के गृहों के खण्ड और दूर के गृहों के दो तथा तीन खण्ड भी दीखते हैं। पीछे के मार्ग में दूरी पर आर्य और बौद्ध मन्दिरों के शिखर दीख पड़ते हैं। जिन गृहों के सामने के भाग दिखाई पड़ते हैं, उनके नीचे के खण्ड में दूकानें हैं, जिनमें विविध प्रकार की वस्तुएं सजी हुई हैं। सारा दृश्य सन्ध्या के प्रकाश से प्रकाशित है। मार्गों पर स्त्री-पुरुष आ-जा रहे हैं। कोई-कोई व्यक्ति दूकानों से कुछ खरीदने के लिए किसी-किसी दूकान पर पर कुछ देर को ठहर जाते हैं और कोई किसी दूकान के भीतर चले जाते हैं। कई व्यक्ति चबूतरे पर बैठे हैं। इधर-उधर से अनेक प्रकार के शब्द और वाक्य सुनाई देते हैं। पुरुषों में प्रायः सभी श्वेत उत्तरीय और अधो-वस्त्र पहने हैं, कोई केवल अधो-वस्त्र पहने है। अनेक व्यक्ति आभूषण भी पहने हैं। स्त्रियाँ विविध प्रकार की साड़ियाँ पहने और उसी प्रकार के वस्त्र वक्षःस्थल पर बांधे हैं। प्रायः सभी आभूषण धारण किये हैं। बांयीं ओर के मार्ग से यानचाँग आता है, वह चबूतरे के निकट खड़ा हो जाता है। यानचाँग की अवस्था लगभग ५० वर्ष की है। सिर और दाढ़ी-मूछों के बाल श्वेत हो चले हैं। वह नीली झाँई लिये हुए लाल रंग का सिला हुआ, घुटने तक लम्बा, चीनी रेशमी अंग तथा कमर से पिंडलियों से नीचा, बिना सिला, उसी प्रकार का वस्त्र (भारतीय अधोवस्त्र के सदृश) पहने है। सिर पर एक चित्र-विचित्र रंग का छोटा-सा रेशमी कपड़ा बांधे है। आभूषण से उसका शरीर रहित है। अपने से भिन्न उसकी वेष-भूषा

देखकर अनेक व्यक्ति कौतहलवश उसके निकट आ जाते हैं ; इनमें से प्रायः सब युवक हैं, केवल एक वृद्ध है।]

एक महाशय : आप कहाँ से आये हैं ?

यानचाँग : चीन देश से बन्धु !

वही : ओहो ! आप तो हमारी भाषा अच्छी प्रकार समझ और बोल लेते हैं।

यानचाँग : मैंने आपकी भाषा का अध्ययन किया है !

दूसरा : आपका नाम क्या है, महाशय ?

यानचाँग : यानचाँग।

तीसरा : आप कदाचित् बौद्ध होंगे और यात्रा के लिए आये होंगे ?

यानचाँग : हाँ, मैं बौद्ध हूँ; यात्रा के लिए भी आया हूँ और आपका देश देखने के लिए भी।

चौथा : हमारा देश आपको कैसा लगता है ?

यानचाँग : आपके देश का जितना भाग मैंने देखा है वह तो मुझे बहुत अच्छा लगा। प्राकृतिक और कृत्रिम, दोनों ही दृष्टियों से, आपके देश का अद्भुत सौन्दर्य है। यदि आपके देश में एक ओर मैंने हिमालय के हिम से ढँके हुए उच्चतम शिखर, नाना वर्णों एवं आकारों के विविध प्रकार की सुगन्धि से युक्त सुमनों तथा मिष्ट स्वाद वाली, परिपूर्ण फलों वाले वृक्षों से भरी हुई, उसकी उपत्यका, अधित्यका और निर्मल, शीतल एवं मधुर नीर वाला गंगा का श्वेत प्रवाह आदि अगणित विशाल एवं सुन्दरतम प्राकृतिक दृश्यों के दर्शन किये हैं, तो दूसरी ओर मनुष्य-कृत वस्तुओं की भी महानता और मनोहरता का अवलोकन किया है। आपके देश के अनेक खण्डों वाले विपुल भवन, उनकी पाषाण तथा काष्ठ पर की शिल्प-कला, चित्रावली और अनेक प्रकार के द्रुमों और लताओं से भरे हुए रमणीय उपवन, सभी सुन्दर हैं। इसी प्रकार आपके समाज में शिक्षा द्वारा, धर्म, ज्ञान और कला का भी विशद प्रसार हुआ है तथा हो रहा है।

चौथा : आप अभी हमारे देश में कहाँ-कहाँ गये हैं ?

यानचाँग : हिमालय और सिन्धु को पार कर मैंने आपके देश में प्रवेश किया है और काश्मीर होता हुआ मैं यात्रा के निमित्त सीधा यहाँ आया हूँ, क्योंकि चीन में हम लोगों ने कान्यकुब्ज की बहुत कीर्ति सुनी थी।

तीसरा : कान्यकुब्ज की तो सारी कीर्ति का श्रेय हमारी वर्त्तमान सम्राज्ञी, राज्यश्री और महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन को है महाशय !

यानचाँग : **(सिर हिलाते हुए)** अच्छा, हम लोगों ने चीन में भी यही सुना था।

एक वृद्ध : इसमें सन्देह ही नहीं। आज से तीस वर्ष पूर्व इस नगर और इस देश में क्या था, इसका मुझे स्मरण है। आज कान्यकुब्ज नगर सारे आर्यवर्त्त का सर्वश्रेष्ठ नगर और यह देश सर्वश्रेष्ठ देश हो गया है। आज जो विभूति यहाँ दिखायी देती है, वह गत तीस वर्षों की इन दोनों महान् आत्माओं की तपस्या का फल है।

दूसरा : और कान्यकुब्ज नगर एवं देश ही क्या सारे आर्यवर्त्त की, इसी प्रकार.........

[दाहिनी ओर के एक मार्ग से एक सुन्दर मालिन इठलाती, नाचती और गाती हुई आती है। उसकी बगल में फूलों की एक टोकरी दबी है और हाथ में एक लकड़ी पर पुष्प-मालाएँ। इसे देखकर सब लोग चुप होकर उसकी ओर आकृष्ट होते हैं और यह सम्भाषण रुक जाता है। मालिन चबूतरे के निकट आकर टोकरी चबूतरे पर रखकर खड़ी हो जाती है और गाती है।]

लो, कुसुम मनोहर ले-लो !
हैं टूटे सकल अभी के,
हलके हैं रंग सभी के,
सब ही सुरभित, वर, ले-लो !
है मालाएँ मनभावन,
कंकण-भुज-बन्ध सुहावन,
इक-से-इक मृदुतर ले-लो !

निज प्रिय के अंग सजाओ,
औ' निरख-निरख सुख पाओ,
तब काम-केलि वह खेलो !

[अनेक व्यक्ति पुष्प-मालाएँ और पुष्पाभरण खरीदते हैं। यानचाँग भी एक पुष्प-माला लेता है। कुछ क्षणों के पश्चात् मालिन पुनः अपनी टोकरी उठाकर उसी प्रकार नाचती-गाती हुई बाँयीं ओर के मार्ग से जाती है।]

यानचाँग : (मालिन के जाने पर दूसरे व्यक्ति से) आप कह रहे थे न कि आपकी सम्राज्ञी और महाराजाधिराज के कारण कान्यकुब्ज क्या, सारे आर्यावर्त्त देश की इसी प्रकार…

दूसरा : हाँ, हाँ, महाशय, सारे आर्यावर्त्त की इसी प्रकार समृद्धि बढ़ी है। आर्यावर्त्त को शासक के रूप में, मनुष्य नहीं, देवता मिल गये हैं।

पहला : इसमें सन्देह नहीं, समस्त उत्तरापथ की प्रजा को जितना सुख है उसका वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता।

तीसरा : अरे, हमारे महाराजाधिराज ने प्रजा के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करने के लिए विवाह तक नहीं किया।

चौथा : और दिन-रात आठों पहर चौंसठ घड़ी उनका समय प्रजा की हितचिन्तना तथा प्रजा के प्रति अपने कर्त्तव्यों के पालन करने में जाता है।

पाँचवाँ : कभी-कभी युद्ध हो जाते हैं। यदि युद्ध बन्द हो जायें और उन्हें युद्धों के लिए समय न देना पड़े तथा देश में पूर्ण शान्ति हो जाये तो न जाने प्रजा का और कितना उत्कर्ष हो सकता है !

[यानचाँग अपने अंग की जेब से एक नोटबुक निकालकर उस पर लिखता है।]

पहला : आप क्या लिख रहे हैं, महाशय ?

यानचाँग : जो कुछ आप लोगों ने कहा है।

पहला : इसका आप क्या करेंगे ?

यानचाँग : आपके देश का समस्त वृत्तान्त लिखकर मैं अपने देश को ले जाऊँगा।

वृद्ध : फिर एक बात और लिखिए कि विवाह न करने भी पर हमारे महाराजाधिराज का अत्यन्त शुद्ध और निर्मल चरित्र है।

[बाँयी ओर से 'जय, कुमारराज भास्करवर्मन की जय' शब्द आता है और शिविका पर कुमारराज आता है। कुमारराज की अवस्था और वेष-भूषा हर्ष के समान ही है। लोग शिविका के मार्ग से हट जाते हैं। आगे-आगे प्रतिहारी चल रहा है और उसके पीछे आठ मनुष्य रत्न-मण्डित शिविका उठाये हुए हैं और उसके पीछे दो शरीररक्षक कवच पहने और आयुध लगाये हुए दाहिने हाथ में शल्य लिये चल रहे हैं। कुमारराज का सब लोग झुक-झुककर अभिवादन करते हैं। कुमारराज अभिवादन का उत्तर सिर झुकाकर देता है। प्रतिहारी उसी प्रकार बोलता हुआ जाता है। पीछे-पीछे शिविका दाहिनी ओर के मार्ग से जाती है।]

पहला : कामरूप देश के राजा कुमारराज भास्करवर्मन !

[यानचाँग लिखता है।]

पहला : अरे, ऐसे-ऐसे पचासों राजा हमारी सम्राज्ञी और महाराजाधिराज के माण्डलिक हैं। आप कहाँ तक लिखिएगा ?

वृद्ध : नहीं, नहीं, इसका बहुत बड़ा महत्त्व है।

यानचाँग : कैसे ?

वृद्ध : एक तो इनका कुटुम्ब बहुत ही प्राचीन है। कहते हैं, महाभारत-काल से इनके वंश का कामरूप देश पर राज्य है। दूसरे, ये हमारे महाराजाधिराज के पहले मित्र हैं॥

[यानचाँग फिर लिखता है।]

यानचाँग : (**कुछ ठहरकर**) एक बात मैं पूछूँ, आप लोग अप्रसन्न तो न होंगे ?

पहला : नहीं, नहीं, अप्रसन्न होने की क्या बात है ? आप तो हमारे अतिथि हैं।

दूसरा : हाँ-हाँ, आप जो कुछ पूछेंगे, हम बतायेंगे।

यानचाँग : मैंने सुना है कि आपके महाराजाधिराज अभी दक्षिण भारत के चालुक्य-नरेश पुलकेशिन से पराजित होकर लौटे हैं ।

दूसरा : नहीं, नहीं, वह बात ऐसी नहीं है ।

यानचाँग : तब ?

पहला : देखिये, मैं आपको बताता हूँ ।

दूसरा : नहीं, नहीं मैं बताता हूँ ।

पहला : (**ज़ोर से**) नहीं जी, मुझे बताने दो ।

तीसरा : मैं सबसे अधिक जानता हूँ ।

वृद्ध : अच्छा, तुम ठहरो, मैं वृद्ध हूँ, ठीक-ठीक बता दूंगा ।

पहला, दूसरा, तीसरा : (**एक साथ सब जोर से**) नहीं, नहीं, मुझसे सुनिये; पहले मेरी सुनिये । मैं आपको पक्की बात बताऊँगा।. पक्की ।

यानचाँग : शान्त होइए, मैं वृद्ध महाशय से सुनूँगा ।

[**सब चुप हो जाते हैं ।**]

वृद्ध : बात यह है कि पुलकेशिन से पराजित होकर लौटे हैं, ऐसी बात नहीं है ।

यानचाँग : तब ?

वृद्ध : उन्होंने पुलकेशिन पर आक्रमण किया था, पर उन्हें सफलता नहीं मिली, बस; (**कुछ ठहरकर**) और इसका कारण है ।

यानचांग : वह क्या ?

वृद्ध : उनके प्राचीन महाबलाधिकृत सिंहनाद अब संसार में नहीं हैं । वर्त्तमान महाबलाधिकृत भण्डि इस युद्ध की ठीक व्यवस्था नहीं कर सके ।

पहला : बराबर यही बात है; क्योंकि सेना के भट तो इतनी वीरता से लड़े कि संसार में कहीं ऐसी वीरता देखना तो दूर रही, किसी ने सुनी भी नहीं होगी ।

दूसरा : इसमें कोई सन्देह नहीं । एक भट का तो यह वृत्त सुना गया कि उसका दाहिना हाथ काट गया तो बाँयें हाथ से ही शत्रु-पक्ष के दस भटों को मारा ।

तीसरा : और एक भट का यह वृत्त सुना गया कि उसका मुण्ड कट गया तो उसके रुण्ड ने दो घड़ी तक युद्ध किया।

पहला : अरे, एक-दो ने नहीं, न जाने कितने भटों ने इस प्रकार की वीरता दिखायी।

दक्षिण पर आक्रमण करने का आयोजन किया जा रहा है। इस बार पुलकेशिन को जान पड़ेगा कि आर्यावर्त्त कितना शक्तिशाली है !

[दाहिनी ओर के मार्ग से मल्लों का एक समूह वाद्य बजाता हुआ आता है। सब चुप होकर उसे देखने लगते हैं। मल्लों का समूह बाँयीं ओर से चला जाता है।]

यानचाँग : **(मल्ल-समूह के जाने पर)** ये लोग कौन थे ?

पहला : ये मल्ल थे।

यानचाँग : ये क्या करते हैं ?

पहला : व्यायाम और मल्ल युद्ध।

[यानचाँग फिर लिखता है। उसी समय बाँयीं ओर के मार्ग से एक सुगन्धित द्रव्य बेचने वाला गन्धी एक पिटारी लिये, गाता हुआ आता है। सबका ध्यान उसी ओर आकर्षित होता है। गन्धी चबूतरे के निकट आकर खड़ा हो, अपनी पिटारी चबूतरे पर रखकर खोलता और गाने लगता है।]

उद्यानों की सार-भूत यह मेरी मंजु पिटारी !
इसकी इक-इक, अहो ! फुलेली उपवन की इक-इक क्यारी !
किसी में पाटल-सत्व भरा ;
किसी में चंपक-तत्त्व धरा।
किसी में जया वास करती ;
किसी में जाति दु:ख हरती।
बकुल, केवड़ा, जुही, केतकी भरी हुई इसमें सारी !
जो मस्तिष्क-शिथिल, उसको यह देती सदा शक्ति न्यारी !

[अनेक व्यक्ति सुगन्धित द्रव्य खरीदते हैं, कुछ ही देर में वह

पिटारी बन्द कर, उसे उठाकर, गाता हुआ दाहिनी ओर के मार्ग से जाता है।]

यानचाँग : (गन्धी के जाने पर) यह कौन था ?

दूसरा : सुगन्धित द्रव्य बेचने वाला गन्धी। हमारे कान्यकुब्ज के सुगन्धित द्रव्य सारे आर्यावर्त्त में प्रसिद्ध हैं।

[यानचाँग लिखता है।]

यानचाँग : बन्धुओ, एक बात आपसे और पूछता हूँ। आशा है, उसके कारण आप अप्रसन्न न होंगे।

पहला : कदापि नहीं।

यानचांग : आपके राज्य में, आपके महाराजाधिराज से आप लोगों के समान सभी लोग प्रसन्न हैं या कोई अप्रसन्न भी है ?

दूसरा : उनसे अप्रसन्न ! कोई नहीं। सारे आर्यावर्त्त में बालक से वृद्ध तक, एक भी व्यक्ति नहीं।

तीसरा : हाँ, हाँ, कोई नहीं।

वृद्ध : देखो, बन्धु, झूठ न बोलो !

यानचाँग : तब कोई उनसे अप्रसन्न भी है ?

वृद्ध : (सिर हिलाकर) हाँ, हैं।

यानचाँग : कौन ?

वृद्ध : कुछ कट्टर ब्राह्मण।

यानचाँग : (सिर हिलाकर) अच्छा, इसका कारण ?

वृद्ध : कुछ विशेष नहीं, उनकी बौद्ध-धर्म से सहानुभूति है, यही प्रधान कारण है।

यानचाँग : ऐसे ब्राह्मण बहुत हैं ?

वृद्ध : बहुत थोड़े, परन्तु उनका कहीं न कहीं गुप्त संगठन है। अनेक वर्षों से सुना जाता है कि इस सत्ता को उलटने के लिए वे संगठन कर रहे हैं।

यानचाँग : उनके संगठन का पता नहीं लगा ?

वृद्ध : अब तक तो नहीं लगा।

यानचाँग : राज्य की ओर से पता लगाने का प्रयत्न तो हुआ होगा ?

वृद्ध : थोड़ा-बहुत प्रयत्न कदाचित् हुआ हो; परन्तु उनकी संख्या और शक्ति इतनी कम है कि न वे आज तक कुछ कर सके, न भविष्य में कुछ कर सकेंगे; अतः राज्य इसकी चिन्ता ही नहीं करता। यह तो आपने पूछा कि महाराजाधिराज से कोई अप्रसन्न है या नहीं, इसलिए मैंने जो कुछ सुना था, वह आपको बता दिया। इस विषय का कोई महत्त्व नहीं है।

[यानचाँग लिखता है। दाहिनी ओर से एक फल बेचने वाली सुन्दर स्त्री फलों की टोकरी बगल में दबाये नाचती और गाती हुई आती है। सबका ध्यान उसकी ओर आकर्षित होता है। वह चबूतरे पर आकर फल की टोकरी रखती और गाती रहती है।]

लेकर आयी फल मैं ले लो, कान्यकुब्ज की फलवाली।
दानोंयुत दाड़िम हूँ लायी, इसके ये दाने,
युवती प्रमदा के दन्तों पर, हँसते मनमाने।
रस से भरी दाख हूँ लायी, इसके सम्मुख।
रमणी के अधरों का रस भी, दे सकता क्या सुख?
गूदे भरे आम हूँ लायी, इस गूदे का दल,
कहता—वनिता के कपोल क्या? कहो न तुम—चल-चल
नहीं मिलेगी सकल जगत् में फिर ऐसी सुन्दर डाली।

[कई व्यक्ति फल खरीदते हैं। कुछ क्षणों के पश्चात् वह टोकरी उठाकर उसी प्रकार नाचती-गाती हुई बाँयी ओर जाती है। उसी समय दो अध्यापकों के साथ विद्यार्थियों का एक समूह दाहिनी ओर के मार्ग से आता है। अध्यापकों की वेशभूषा साधारण पुरुषों के समान है, परन्तु विद्यार्थियों की ब्रह्मचारियों के सदृश।]

दूसरा : हमारे नालन्दा विश्वविद्यालय के विद्यार्थी और अध्यापक हैं। अभी विद्यालय की छुट्टी हुई हैं, अतः कान्यकुब्ज देखने के लिए आये हैं।

[समूह चबूतरे के निकट आता है। यानचाँग समूह की ओर बढ़ता है। उसके साथी भी उसके साथ जाते हैं।]

यानचाँग : (नोटबुक को जेब में रखकर, प्रसन्नता से अध्यापकों का

अभिवादन करते हुए) यह चीनी यात्री यानचाँग नालन्दा के अध्यापकों का अभिवादन करता है।

एक अध्यापक : (खड़े होकर, अभिवादन का उत्तर देते हुए, दूसरा अध्यापक और विद्यार्थी-समूह भी खड़ा हो जाता है।) अच्छा, आप इस देश में यात्रा निमित्त आये हैं ?

यानचाँग : हाँ, महानुभाव, और आपके इस परम सुन्दर पवित्र, सभ्य और सुसंस्कृत देश के दर्शनार्थ भी।

दूसरा अध्यापक : (मुस्कराकर) आप तो हमारी भाषा बड़ी सुन्दरता से बोलते हैं, महाशय !

यानचाँग : हाँ, महानुभाव, मैंने आपकी देववाणी और प्राकृत दोनों भाषाओं के थोड़े-बहुत अध्ययन का प्रयत्न किया है।

पहला : यह सुनकर हमें परम प्रसन्नता हुई।

यानचाँग : नालन्दा की कीर्ति तो हमारे देश के कोने-कोने में पहुँच गयी है, महानुभावो ! कदाचित् समस्त विश्व में इस समय ऐसा कोई विश्वविद्यालय नहीं है।

दूसरा : कुछ लोग ऐसा समझते हैं, परन्तु हम लोगों को इस सम्बन्ध में कुछ भी कहने का अधिकार नहीं है।

यानचाँग : नालन्दा विश्वविद्यालय में कितने विद्यार्थी हैं, महानुभाव ?

पहला : कई सहस्र हैं, महाशय, परन्तु नालन्दा के अतिरिक्त इस देश में और भी कई विश्वविद्यालत हैं। और फिर प्रत्येक नगर और ग्रामों में अनेक संस्थाओं और गुरुकुलों द्वारा शिक्षा की व्यवस्था है। कन्याओं के लिए कन्या-विद्यालय अलग हैं।

यानचाँग : और इस देश में शिक्षा की क्या प्रणाली है, महानुभाव ?

पहला : यह तो थोड़े में नहीं बताया जा सकता, महाशय ! आप स्वयं नालन्दा आइए और सब बातों का निरीक्षण कीजिए। नालन्दा की शिक्षा-प्रणाली देखने से आपको देश-भर की शिक्षा-प्रणाली का ज्ञान हो जायगा।

यानचाँग : चीन देश से विदा होते ही मैंने नालन्दा आने और वहाँ विद्यार्थी होकर कुछ समय तक अध्ययन करने का विचार कर

लिया था, महानुभाव !

पहला : यह आपकी कृपा है। पर, आप आवें अवश्य और मेरे साथ ही निवास करें।

यानचाँग : आपका शुभ नाम, महानुभाव ?

दूसरा : प्रभामित्र।

यानचाँग : **(अंगे से नोटबुक निकाल उसमें नोट करते हुए दूसरे से)** और आपका महानुभाव ?

दूसरा : जिनमित्र।

यानचाँग (इसे भी नोट करते हुए) नालन्दा में तो विदेशों के भी अनेक विद्यार्थी अध्ययन करते है न ?

दूसरा : हाँ, हाँ, अनेक।

पहला : तो फिर आज्ञा हो !

यानचाँग : क्षमा कीजिए, मैंने आप लोगों का इतना अमूल्य समय लिया। **(दोनों को अभिवादन करता है।)**

पहला : (अभिवादन का उत्तर देते हुए) नहीं-नहीं, कोई बात नहीं। आपके दर्शन से हम लोगों को परम हर्ष हुआ है। **(बाँयीं ओर के मार्ग पर आगे बढ़ता है।)**

दूसरा : (अभिवादन का उत्तर देते हुए) आप नालन्दा अवश्य आवें। **(उसी ओर बढ़ता है।)**

यानचाँग : हाँ-हाँ, अवश्य और शीघ्र ही आऊँगा, महानुभाव !

[विद्यार्थीगण यानचाँग का अभिवादन करते हैं। यानचाँग अभिवादन का उत्तर देता है। अध्यापकों और विद्यार्थी-समूह का बायों ओर के मार्ग से प्रस्थान।]

यानचाँग : (कुछ ठहरकर अपने पहले साथियों से) क्यों बन्धुओं आपकी सम्राज्ञी और महाराजाधिराज के दर्शन भी हो सकते हैं ?

पहला : अवश्य ! जो उनसे मिलना चाहते हैं, वे उन सबसे मिलते हैं।

दूसरा : और बड़ी नम्रतापूर्वक।

तीसरा : हाँ, मद, तो उन्हें छू नहीं गया है।

वृद्ध : और आपसे मिलकर तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता होगी।

यानचाँग : यह क्यों ?

वृद्ध : वे विद्वानों से बडी प्रसन्नतापूर्वक मिलते और उनका बड़ा सत्कार करते हैं। आप तो बड़े विद्वान् जान पड़ते हैं।

यानचाँग : (मुस्कराकर) यह आपने कैसे जाना ?

वृद्ध : क्यों ? हमारी भाषा विदेशी होने पर भी आप उसमें इस प्रकार वार्त्तालाप करते हैं। क्या यह साधारण बात है ?

[दाहिनी ओर के मार्ग से संघस्थविर के संग बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणियों के एक समूह का प्रवेश। ये भिक्षु रक्त-वर्ण के चीवर पहने हुए हैं।]

यानचाँग : (**अपने साथियों से**) ये संघस्थविर के संग भिक्षु बौद्ध और भिक्षुणी जान पड़ते हैं।

पहला : हाँ, महाशय, हमारे नगर में अनेक बौद्ध मन्दिर और संघाराम भी हैं।

दूसरा : हमारे महाराजाधिराज आर्य और बौद्ध दोनों धर्मों को एक दृष्टि से देखते हैं।

[यानचाँग संगस्थविर की ओर बढ़ता है। परदा गिरता है।]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान : हर्ष के प्रासाद की बाहरी दालान

समय : सन्ध्या

[**दालान की बनावट दूसरे अंक के पहले दृश्य की दालान के सदृश ही है, परन्तु भित्ति और स्तम्भों का रंग उस दालान की भित्ति और स्तम्भों के रंग से भिन्न है। भण्डि का प्रवेश। भण्डि की अवस्था अब लगभग ५० वर्ष की है। यद्यपि शरीर वैसा ही है तथापि गल-मुच्छों, मस्तक तथा नेत्रों के दोनों ओर कुछ झुर्रियाँ पड़ जाने के कारण मुख में परिवर्तन दीख पड़ता है। केश भी यत्र-तत्र श्वेत हो गये हैं। वेश-भूषा पहले के समान ही है। मुख उदास है।**]

भण्डि : (जोर से) प्रतिहारी! प्रतिहारी!

[**दूसरी ओर से प्रतिहारी का प्रवेश। वह अभिवादन करता है।**]

भण्डि : (अभिवादन का उत्तर देते हुए) परमभट्टारक और सम्राज्ञी कहाँ विराज रहे हैं?

प्रतिहारी : उपशाला में श्रीमान्!

भण्डि : और कौन है?

प्रतिहारी : चीनी यात्री यांनचांग।

भण्डि : (पैर पटककर) ओह! क्या दिन-रात वह यहीं बैठा रहता है?

प्रतिहारी : (कुछ मुस्कराकर) दिन-रात तो नही श्रीमान्, परन्तु इधर उनका आवागमन कुछ अधिक हो रहा है।

भण्डि : (एक ओर से दूसरी ओर तक टहलकर) परन्तु मुझे आज सन्ध्या को उपस्थित होने की आज्ञा दी गयी थी।

प्रतिहारी : मैं श्रीमान् के आगमन की सूचना करता हूँ!

भण्डि : (कुछ सोचकर) हाँ, सूचना तो कर ही दो।

[**प्रतिहारी जिस ओर से आया था उसी ओर जाता है। भण्डि इधर-उधर टहलता है। जिस ओर से भण्डि आया था उसी ओर से**

माधवगुप्त का प्रवेश । माधवगुप्त बहुत ही उदास है । दोनों एक-दूसरे का अभिवादन करते हैं ।]

भण्डि : (माधवगुप्त को देख, खड़े होकर) बहुत अच्छा हुआ, तुम से यहीं मिलना हो गया; मित्र ! मैं तो तुमसे मिलना ही चाहता था। तुमने एक नयी बात सुनी ?

माधवगुप्त : कौन सी ?

भण्डि : दक्षिण की पराजय का सारा दोष मेरे सिर पर मढ़ा जा रहा है।

माधवगुप्त : मैंने भी यह चर्चा सुनी है; परन्तु परमभट्टारक ऐसा नहीं समझते ।

भण्डि : परमभट्टारक चाहे न समझें, पर जन-समुदाय अवश्य समझता है !

माधवगुप्त : इसका कारण है।

भण्डि : क्या ?

माधवगुप्त : बात यह है कि राजसिंहासन पर अब तक सम्राज्ञी आसीन हैं। परमभट्टारक और महामात्य भी सारा राज्य-काज चला रहे हैं। महाबलाधिकृत सिंहनाद नहीं हैं, केवल यह नवीन बात हुई है। और इस राज्य के इतिहास में पराजय नयी बात है, अतः तुम पर सारा दोष लाद देने से सर्वसाधारण को संतोष हो जाता है।

भण्डि : परन्तु, परमभट्टारक स्वयं युद्ध पर गये थे।

माधवगुप्त : राजा को यथासम्भव दोष न देकर कर्मचारियों को दोष देना यह जन-समुदाय की प्रवृत्ति होती है।

भण्डि : और महाबलाधिकृत सिंहनाद के पश्चात् वल्लभी को जो मैंने जीता था।

माधवगुप्त : वल्लभी विजय के पश्चात् दक्षिण की पराजय हुई है न ?

भण्डि : हाँ।

माधवगुप्त : जन-समुदाय का स्मृति-कोष बहुत ही छोटा होता है। वह नवीन बात को स्मरण रख सकता है; पुरानी बातों को नहीं।

भण्डि : (कुछ ठहरकर) अच्छा, इस बार मैं दिखा दूंगा कि महाबल
धिकृत भण्डि किस वस्तु का बना है। दक्षिण पर आक्रमण
जो योजना मैंने बनायी है उसमें असफलता को स्थान ही नहीं
उसी योजना पर विचार करने के लिए परमभट्टारक ने इस स
मुझे बुलाया है।

[प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी : (दोनों का अभिवादन कर भण्डि से) चलिए !

[तीनों का दाहिनी ओर का प्रस्थान। परदा गिरता है।]

छठा दृश्य

स्थान : कान्यकुब्ज के राज-प्रासाद का दालान

समय : सन्ध्या

[**वही दालान है जो इस अंक के पहले दृश्य में था। बीच में सुवर्ण-मण्डित तथा रत्नों से जड़ा हुआ शयन रखा है, जिस पर हर्ष और राज्यश्री बैठे हैं। दाहिनी ओर एक सुवर्णमण्डित आसन्दी रखी है, जिस पर यानचाँग बैठा है। बाँयी ओर दो सुवर्णमण्डित आसन्दियाँ रखी हैं, जो रिक्त हैं। एक दासी खड़ी हुई खस का पंखा झल रही है। प्रतिहारी के संग माधवगुप्त और भण्डि का प्रवेश। प्रतिहारी अभिवादन करता है और उन्हें छोड़कर अभिवादन कर पुनः बाहर जाता है। माधवगुप्त और भण्डि, हर्ष और राज्यश्री का अभिवादन करते हैं। दोनों अभिवादन का उत्तर देते हैं।**]

हर्ष : आइए महाबलाधिकृत और माधवगुप्त, बैठिए।

[**दोनों रिक्त आसन्दियों पर बैठते हैं।**]

हर्ष : (**माधवगुप्त और भण्डि से यानचाँग की ओर संकेत कर**) आप लोग कदाचित् चीनी य..। यानचांग महोदय को नहीं जानते? (**यानचाँग से भण्डि की ओर संकेत कर**) और ये इस राज्य के महाबलाधिकृत हैं। (**माधवगुप्त की ओर संकेत कर**) और ये मेरे परम मित्र माधवगुप्त!

[**तीनों एक-दूसरे का अभिवादन करते हैं।**]

माधवगुप्त : आपका नाम तो सुना था, परन्तु अब तक दर्शन का सौभाग्य प्राप्त न हुआ था।

भण्डि : मैंने भी नाम तो सुना था, परन्तु कभी भेंट न हुई थी।

यानचाँग : कान्यकुब्ज में आये हुए मुझे थोड़े ही दिन हुए हैं। आप लोगों को राज-काज से अवकाश ही कहाँ, इसलिए अब तक मिलना न हो सका, परन्तु आप दोनों की प्रशंसा, मैंने परमभट्टारक

और प्रजा दोनों के ही मुख से सुनी है। हर्ष की बात है कि आज दर्शन भी हो गये।

हर्ष : यानचांग महोदय संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं के पण्डित हैं।

राज्यश्री : और बौद्ध-धर्म का भी इन्होंने बड़ा अच्छा अध्ययन किया है

भण्डि : (सिर हिलाते हुए) अच्छा।

माधवगुप्त : मैंने भी सुना था।

[कुछ देर सब चुप रहते हैं।]

भण्डि : महाराज, दक्षिण पर आक्रमण के सम्बन्ध में जो नयी योजना बनाने की आज्ञा हुई थी, वह तैयार हो गयी है। राज-सभा ने उस पर आज विचार भी कर दिया है।

राज्यश्री : परन्तु, अब दक्षिण पर आक्रमण न होगा, महाबलाधिकृत ! मैंने परमभट्टारक से भी स्वीकृति ले ली है।

भण्डि : (चौंककर) दक्षिण पर आक्रमण न होगा !

राज्यश्री : हाँ, महाबलाधिकृत, अभी-अभी हम लोगों ने यह निर्णय किया है।

भण्डि : इसका क्या अर्थ है सम्राज्ञी ?

राज्यश्री : (मुस्कराकर) आक्रमण न होने का अर्थ तो आक्रमण न होना ही हो सकता है, महाबलाधिकृत !

[भण्डि को छोड़कर सब लोग हँस पड़ते हैं।]

भण्डि : (कुछ सकुचाते हुए) हाँ, वह तो ठीक है, सम्राज्ञी, किन्तु दक्षिण पर आक्रमण न होगा, यह बात मैं विचार ही न सकता था। आर्यावर्त का साम्राज्य किसी से पराजित होकर बदले के लिए आक्रमण न करेगा, यह बात मेरे मन में नहीं उठ सकती थी।

राज्यश्री : परमभट्टारक ने सिंहासनासीन होते ही शशांक नरेन्द्रगुप्त से बदला लेने के लिए गौड़ पर आक्रमण करने का विचार किया था। इसके पश्चात् पहले छः वर्षों में तो उन्हें अश्व से उतरने

तक का अवकाश न मिला और शेष समय भी कभी युद्ध, कभी विप्लव की शांति एवं अन्य झगड़ों में गया। अब दक्षिण से बदला लेने के लिए फिर से युद्ध हो, यह मेरी सहन-शक्ति के बाहर की बात है।

भण्डि : परन्तु, सम्राज्ञी, दक्षिण के युद्ध में बहुत थोड़ा समय लगेगा। फिर इस बार दक्षिण के युद्ध की मैंने ऐसी योजना बनाई है कि उसमें असफलता मिल ही नहीं सकती।

राज्यश्री : नहीं, महाबलाधिकृत, अब मैं एक दिन का भी युद्ध नहीं चाहती। सिंहासनासीन होने के दिन मैंने भारत में एक राष्ट्र की स्थापना के प्रयत्न की घोषणा की थी। उस प्रयत्न की ओर, मेरे मतानुसार हम लोग एक पग भी आगे नहीं बढ़े है। परमभट्टारक और मैं दोनों ही वृद्ध हो चले हैं। अब युद्ध नहीं, एक दिन का भी युद्ध नहीं!

भण्डि : यदि मैं यह कहूँ तो क्षमा कीजियेगा, सम्राज्ञी, कि मैं आपकी इस बात से सहमत नहीं कि एक राष्ट्र-निर्माण के कार्य में हम लोगों ने एक पग भी आगे नहीं बढ़ाया है। जब तक सारा भारतवर्ष एक साम्राज्य के अन्तर्गत नहीं आता, तब तक एक राष्ट्र-निर्माण का कार्य हो ही कैसे सकता है? आर्यावर्त्त एक साम्राज्य के अन्तर्गत आ गया है, अतः जहाँ तक उत्तरापथ का सम्बन्ध है, वहाँ तक एक राष्ट्र-निर्माण का कार्य बहुत दूर तक हो चुका। ज्योंही दक्षिण भारत साम्राज्य के अन्तर्गत आ जायेगा, त्योंही एक राष्ट्र के निर्माण-कार्य का सबसे कठिन भाग समाप्त हो जायगा, और फिर हम सब लोगों का सारा समय एक धर्म, एक भाषा और एक प्रकार के सामाजिक संगठन-सम्बन्धी कार्यों में ही व्यतीत होगा।

राज्यश्री : परन्तु, उत्तर भारत के एक साम्राज्य के अन्तर्गत होने पर भी क्या उसमें एक राष्ट्र का निर्माण हो गया है?

भण्डि : न...न...नहीं हुआ, यह मैं मानता हूँ, परन्तु इसके कारण हैं।

राज्यश्री : कौन से?

भण्डि : (कुछ सोचते हुए) अनेक कारण हैं, सम्राज्ञी !

राज्यश्री : होंगे, परन्तु मेरे मतानुसार सबसे प्रधान कारण एक ही है, महाबलाधिकृत, और वह है परमभट्टारक को उस ओर पूर्ण लक्ष देने के लिए अवकाश न मिलना। अब पहले आर्यावर्त्त में एक राष्ट्र का निर्माण हो जावे तब हम दक्षिणापथ पर आक्रमण करने की बात सोचेंगे।

[कुछ देर सब लोग चुप रहते हैं।]

यानचाँग : (हर्ष और राज्यश्री से) यदि मुझे आज्ञा हो तो महाबलाधिकृत से कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।

हर्ष : हाँ, हाँ, आप जो कहना चाहें अवश्य कह सकते हैं।

भण्डि : मैं भी सहर्ष सुनूँगा।

यानचाँग : क्या आप समझते हैं, महाबलाधिकृत, कि सारे भारतवर्ष पर एक राज्य होने से भारत में एक राष्ट्र का निर्माण हो जाएगा ?

भण्डि : केवल इतने ही से हो जायगा, यह मैं नहीं कहता; परन्तु यह उसके लिए सबसे पहली, सबसे कठिन और सबसे प्रधान बात है।

यानचाँग : मौर्यों के समय तो सारा भारत एक साम्राज्य के अन्तर्गत था, गुप्तों के समय भी सारा आर्यवर्त्त एक साम्राज्य के अन्तर्गत रहा, फिर भी भारत में एक राष्ट्र का निर्माण क्यों न हुआ ? बात यह है, महाबलाधिकृत, कि युद्ध करके बलपूर्वक भिन्न-भिन्न राज्यों को एक साम्राज्य के अन्तर्गत लाने से एक राष्ट्र का निर्माण ही असम्भव है। वे राज्य सदा यह सोचा करते हैं कि बलपूर्वक हम एक साम्राज्य के अन्तर्गत रखे गये हैं। बार-बार वे विद्रोह करते हैं और अवसर पाते ही स्वतन्त्र हो जाते हैं। इसलिए......

हर्ष : (बीच ही में) मैं आपके कथन के बीच ही कुछ कह देना चाहता हूँ !

यानचाँग : हाँ-हाँ, अवश्य !

हर्ष : जब मैंने स्थाण्वीश्वर का राज्य ग्रहण किया और सम्राज्ञी कान्यकुब्ज के सिंहासन पर बैठी, उस समय हम लोगों ने भी यही विचार किया था। हम लोग बलपूर्वक किसी को साम्राज्य के अन्तर्गत नहीं लाना चाहते थे। सम्राज्ञी ने सिंहासनासीन होते ही जो घोषणा की थी उसमें कह दिया था कि इस साम्राज्य के अन्तर्गत जो राज्य सम्मिलित होंगे उनका पद समानाधिकारियों का रहेगा। परन्तु वह नीति सफल न हुई। कुछ राज्यों को छोड़कर शेष राज्य स्वेच्छापूर्वक साम्राज्य में सम्मिलित ही न हुए, तब विवश होकर युद्ध करना पड़ा।

यानचाँग : राज्यों को सम्मिलित करने का प्रयत्न किये बिना ही यदि एक धर्म, एक भाषा और एक प्रकार के सामाजिक संगठन का प्रयत्न किया गया होता, तो भिन्न-भिन्न देशों में एकता की भावना उत्पन्न हो जाती और तब उन्हें अनुमान हो जाता कि साम्राज्य उन्हीं की वस्तु है, तथा एक साम्राज्य के अन्तर्गत रहना उन्ही के स्वार्थ के लिए आवश्यक है।

भण्डि : सारे देश को एक साम्राज्य के अन्तर्गत लाये बिना यह प्रयत्न ही क्योंकर हो सकता था ?

यानचाँग : क्यों चीन देश के आपके साम्राज्य के अन्तर्गत हुए बिना ही क्या आपके देश ने वहाँ बौद्ध-धर्म की स्थापना का यत्न नहीं किया था ? एक चीन ही नहीं, भारतीय सम्राट् अशोक ने तो सारे संसार को एक सूत्र में बाँधने का उद्योग किया था, और यह, संसार को एक साम्राज्य के अन्तर्गत लाने का प्रयत्न किये बिना ही आप समझते हैं कि यदि अपने देश को एक साम्राज्य के अन्तर्गत ले भी आये और यदि आपने अपने देश में एक राष्ट्र की स्थापना कर भी ली तो आप सब भयों से मुक्त हो जायँगे ?

भण्डि : फिर हमें कौनसा भय रह जायेगा ?

यानचाँग : विदेशी आक्रमणों का।

भण्डि : उसके लिए हम यथेष्ट रूप से बलवान रहेंगे।

यानचाँग : परन्तु जैसे एक प्रकार की वस्तु से उसी प्रकार की वस्तु

उत्पन्न होती है, वैसे युद्ध से सदा युद्ध की उत्पत्ति होती है। ज्योंही एक विदेशी आक्रमण में आपकी शक्ति का व्यय हुआ और दूसरों ने देखा कि आप निर्बल हैं, त्योंही आप पर दूसरा आक्रमण होगा; जब तक यह युद्ध रहेगा तब तक आप ही नहीं, सारे संसार की यही अवस्था रहेगी। इसलिए सम्राट् अशोक के सदृश, बिना युद्ध के ही सारे संसार को एक सूत्र में बाँधने का प्रयत्न होना चाहिए।

भण्डि : परन्तु सम्राट् अशोक का तो वह प्रयत्न असफल हो गया।

यानचाँग : एक देश चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों न हो, अकेला इतना बड़ा कार्य नहीं कर सकता। इसके लिए अनेक देशों में एक साथ यह प्रयत्न चलना चाहिए और वह भी सतत। सम्राट् अशोक के पश्चात् वह कार्य इस प्रकार से अब तक संसार में कहीं किया ही नहीं गया।

माधवगुप्त : **(जो अब तक चुप होकर सारे विवाद को ध्यानपूर्वक सुन रहा था)** तो आप समझते हैं कि संसार में एक धर्म, एक भाषा और एक सामाजिक संगठन की स्थापना हो सकती है ?

यानचाँग : यह चाहे न हो, परन्तु उस सहिष्णुता की स्थापना अवश्य हो सकती है, जिसमें एक धर्म, एक भाषा और एक प्रकार के सामाजिक संगठनवाले दूसरे धर्म, दूसरी भाषा और दूसरे प्रकार के सामाजिक संगठनवालों को अपना शत्रु न समझकर मित्र समझें, एक-दूसरे का रक्तपात करने के इच्छुक न रहकर एक-दूसरे को सहायता पहुँचावें और इस कार्य में सब अपना-अपना स्वार्थ मानें।

हर्ष: **(प्रसन्न होकर)** यह मैं भी मानता हूँ। यह परिस्थिति संसार में अवश्य लायी जा सकती है और आप ठीक कहते हैं, यानचाँग महोदय, कि जब तक संसार में यह परिस्थिति नहीं लाई जायगी, तब तक कोई भी देश सुखी नहीं हो सकता। आपके इस कथन को भी मैं मानता हूँ कि एक देश इस परिस्थिति की स्थापना में सफल नहीं हो सकता और इसके लिए अनेकों देशों

में एक साथ तथा सतत प्रयत्न होना चाहिए। वल्लभी के पराजित नरेश सेनापति ध्रुवसेन को वल्लभी का राज्य लौटा-कर उसके संग अपनी पालित पुत्री जयमाला का विवाह कर उसे जामाता बनाऊँगा। पुलकेशिन को अब मैं युद्धकर विजय न करूँगा, परन्तु बिना साम्राज्य के अन्तर्गत किये ही मैत्री स्थापित कर विजय करूँगा। साथ ही, यत्न करूँगा कि अन्य नरेश भी यही करें। **(यानचाँग से)** चीन-सम्राट् से अपने देश में आप यही कराइए। मैंने सुना है, पुलकेशिन से पारस देश का पारस्परिक मैत्री-सम्बन्ध है। चीन और आर्यावर्त्त का सम्बन्ध आप करा दीजिए। इस प्रकार चीन, पारस और भारत इन तीन महान् देशों में यदि परस्पर मैत्री हो गयी, तो जम्बू के अन्यान्य छोटे-छोटे देशों में तो यह कार्य बहुत शीघ्र हो जायगा और फिर संसार का गुरु जम्बू-द्वीप इस दिशा में भी अन्य द्वीपों के पथ-प्रदर्शन का कार्य करेगा। **(कुछ ठहरकर भण्डि से)** महाबलाधिकृत, अब युद्ध नहीं, इस जीवन में अब मैं युद्ध न करूँगा। मेरा जीवन तथा सारे आर्यावर्त्त की शक्ति अब इसी शुभ कार्य में लगेगी।

राज्यश्री : (आँखों में आँसू भरकर) धन्य मेरा भाग्य और धन्य आर्यावर्त्त का!

[कुछ देर तक सब चुप रहते हैं।]

हर्ष : राज्यश्री, सारे विश्व को इस प्रकार के एक नवीन संगठन में सम्बद्ध करने के लिए, कितने दीर्घकाल और महान् प्रयत्न की आवश्यकता होगी, इसकी कल्पना सहज ही में की जा सकती है। फिर प्रयत्न कर्त्ता यह प्रयत्न अधिकांश में अपने देश में ही कर सकता है, यह भी स्पष्ट है। भारतवर्ष में यह प्रयत्न जिन दिशाओं में होगा उन्हें मैं युगों से सोच रहा हूँ। अब युद्ध को सर्वथा बन्द कर देने के पश्चात् मेरा सारा समय इसी प्रयत्न में जायगा।

राज्यश्री : वे कौनसी दिशाएँ हैं, शिलादित्य ?

हर्ष : वे ही बता रहा हूँ राज्यश्री! आर्य और बौद्ध-धर्म के एकीकरण

के लिए मैं स्वयं शिव, आदित्य और बुद्ध की प्रतिमाओं का एक सार्वजनिक पूजन करूँगा। उसे यज्ञ का रूप देकर आर्यावर्त्त के समस्त राजाओं, धार्मिक संस्थाओं और प्रजा को सम्मिलित होने का निमन्त्रण दूँगा।

राज्यश्री : इससे धार्मिक एकता में अवश्य ही बहुत बड़ी सफलता मिलेगी।

हर्ष : और इसी अवसर पर तुम्हारी ओर से मैं कान्यकुब्ज के कोष में संग्रहीत समस्त धन, सम्पत्ति, रत्न-आभूषण का दान करूँगा।

भण्डि : (चौंककर) सर्वस्व-दान !

हर्ष : हाँ, सर्वस्व-दान महाबलाधिकृत, मेरे शरीर में जो आभूषण है, इन तक का दान। **(कुछ रुककर)** देखिए महाबलाधिकृत, नरपति-गण अधिकतर यह कोष-संग्रह अपने विलासों की पूर्ति एवं एक-दूसरे से युद्ध कर अपने प्रभाव की वृद्धि के लिए करते हैं। इस प्रवृत्ति के नाश के लिए आर्यावर्त्त के साम्राज्य की ओर से केवल उपदेश नहीं, किन्तु कर्म की आवश्यकता है।

माधवगुप्त : और आप समझते हैं, परमभट्टारक, कि आपके एक बार इस प्रकार के दान से नरेशों की यह प्रवृत्ति नष्ट हो जायगी ?

हर्ष : मैं एक बार ही इस प्रकार का दान न करूँगा।

माधवगुप्त : तब ?

हर्ष : प्रजा-हित के समस्त कार्यों में व्यय होने के पश्चात् जो कुछ धन साम्राज्य के कोष में बचेगा, उसका हर चौथे वर्ष युग का अन्त होते ही, दान कर दिया करूँगा।

यानचाँग : (गद्गद कंठ से) धन्य है आपको ! परमभट्टारक, धन्य है ! आपके सर्वस्व-दान का यह संकल्प संसार के इतिहास में एक नवीन घटना है।

हर्ष : (राज्यश्री से) तुम्हें यह कार्यक्रम स्वीकृत है, राज्यश्री ?

राज्यश्री : (आँखों में आँसू भरकर) स्वीकृत है ! हृदय से स्वीकृत है, शिलादित्य ! ऐसे भ्राता को पाकर पृथ्वी पर मेरा जन्म धन्य हो गया।　　**[यवनिका-पात]**

चौथा अंक

पहला दृश्य

स्थान : बुद्ध-गया

समय : प्रात:काल

[बाँयीं ओर दूरी पर संघाराम का एक कोना दिखाई देता है। बीच में शिखरदार मठ है। दाहिनी ओर बोधि-वृक्ष और उसके नीचे के चबूतरे का कुछ भाग दीखता है। निकलते हुए सूर्य के आलोक से दृश्य आलोकित है। अनेक सैनिक बोधिवृक्ष को कुल्हाड़ियों से काट रहे हैं। अनेक सैनिक बौद्ध-भिक्षुकों को बन्दी किये हुए खड़े हैं। कई बौद्ध-भिक्षु सिसक-सिसककर रो रहे हैं। परन्तु उनके इस रुदन से भय के कारण चिल्लाने का शब्द नहीं है। बोधि-वृक्ष के सामने उसकी ओर मुख किये शशांक और आदित्यसेन खड़े हुए हैं। दोनों सैनिक वेश-भूषा में हैं। शरीर पर कवच है, सिर पर शिरस्त्राण, और आयुधों से सुसज्जित हैं। शशांक अपना बाँयाँ हाथ आदित्यसेन के कन्धे पर रखे हैं और दाहिना हाथ आगे कर उसको अँगुली से बोधि-वृक्ष को दिखाते हुए आदित्यसेन से अत्यधिक उत्तेजित शब्दों में कुछ कह रहा है। शशांक और आदित्यसेन के सम्भाषण के बीच-बीच में कभी-कभी कुल्हाड़ियों के चलने और कभी-कभी किसी-किसी बौद्ध-भिक्षु के सिसक-सिसककर रोने के शब्द सुनायी देते हैं।]

शशांक : बेटा, आज इस बोधि-वृक्ष की एक-एक शाखा के साथ बौद्ध-धर्म की भी एक-एक शाखा शाखा का नाश हो जायगा और इसकी जड़ उखड़ते ही बौद्ध-धर्म का भी मूलोच्छेदन। वर्षों, और वर्षों क्या, युगों से जिस स्वप्न को देखते-देखते **(दाहिने हाथ को केशों पर फेरकर)** ये केश श्वेत हो गये, **(उसी हाथ को मुख पर फेरकर)** इस चर्म पर झुर्रियाँ पड़ गयीं, वह स्वप्न तेरे कारण

सत्य हो सका, बेटा, तेरे कारण ! यदि तू अपने कुल-कलंक पिता का त्याग कर मेरे निकट न आता तो क्या मेरा स्वप्न कभी सत्य हो सकता था ? आर्य-धर्म के पुनरुत्थान का यह महान् आयोजन क्या सफल होना सम्भव था ?

आदित्यसेन : पिताजी, मेरे स्वप्न के सत्य होने के भी तो आप ही कारण होंगे ।

शशांक : (नेत्रों को पोंछते हुए) तेरे और मेरे स्वप्न में अन्तर नहीं है, बेटा ! फिर भी वर्द्धनों के जिस नाश को तू अपना स्वप्न कहता है, उसके सत्य होने में भी अब तो बहुत कम सन्देह और बहुत कम समय रह गया है । परन्तु, परन्तु उसके सत्य होने का कारण भी, मैं नहीं, यथार्थ में तू ही है बेटा !

आदित्यसेन : यह कैसे पिताजी ?

शशांक : (आदित्यसेन को एकटक देखते हुए धीरे-धीरे) यह कैसे ? इसमें गूढ़...बड़ा गूढ़ रहस्य है । तू हृदय से शासित होता है, बेटा और मैं, मैं मस्तिष्क से । मस्तिष्क का शासन छोटे-छोटे कार्यों, छोटे-छोटे षड्यन्त्रों को चाहे सफल कर दे, परन्तु...

[बोधि-वृक्ष की दो शाखाएँ शब्द करती हुई गिरती हैं । उनके गिरने से एक भिक्षु चिल्लाकर रोने लगता है ।]

शशांक : (उस भिक्षु के निकट जाते हुए निकट खड़े सैनिक से चिल्लाकर) —खींच लो इसकी जीभ और भर दो इसके मुँह में धूलि । आर्यधर्म के शत्रुओ ! अधर्मियो ! पामरो ! अभी क्या हुआ है, इस वृक्ष के पश्चात् तुम सबकी यही दशा होगी, जो इस वृक्ष की हो रही है । इस पुण्यभूमि में शशांक नरेन्द्रगुप्त बौद्ध-धर्म का चिह्न तक न रहने देगा, चिह्न तक नहीं !

आदित्यसेन : अरे तुम्हीं...तुम्हीं दुष्टों ने तो विदेशियों से मिल-मिलकर गुप्त-साम्राज्य का नाश कराया है । तुम्हारी यह वर्द्धन-सत्ता अब थोड़े, बहुत थोड़े काल की पाहुनी है ।

[परदा गिरता है ।]

दूसरा दृश्य

स्थान : माधवगुप्त के भवन की दालान

समय : प्रातःकाल

[दालान की बनावट वैसी ही है जैसी दूसरे अंक के पहले दृश्य के **दालान की थी। भित्ति और स्तम्भों का** रंग उस दालान की **भित्ति और स्तम्भों से भिन्न है। माधवगुप्त और** भण्डि का बायीं ओर से प्रवेश। **दोनों अपनी साधारण वेश-भूषा में हैं।]**

भण्डि : **(लम्बी साँस लेकर)** तो अब बहुत शीघ्र आर्यावर्त की युगों में एकत्रित की गई सारी सम्पत्ति निरर्थक रीति से बहा दी जाएगी।

माधवगुप्त : और उसका सबसे अधिक दुःख तुम्हें है?

भण्डि : दुःख न होगा, बन्धु ! जिस सम्पत्ति से मैं केवल दक्षिणी भारत ही नहीं, अपितु सारे संसार को विजय कर सकता था, जिसके एक क्षुद्र अंश से शशांक के इस विद्रोह का कुछ क्षणों में दमन किया जा सकता था, उसका यह निरर्थक व्यय मुझे सबसे अधिक दुःख न देगा तो किसे देगा? क्या तुम इस व्यय को उचित मानते हो?

माधवगुप्त : अब तक मैं इसका निर्णय नहीं कर सका।

भण्डि : **(आश्चर्य से)** अच्छा ! उस दिन जब परमभट्टारक ने सर्वस्व-दान का निश्चय किया तब तो तुमने भी एक प्रकार से इस प्रस्ताव का विरोध किया था।

माधवगुप्त : अवश्य, परन्तु उसके पश्चात् मैं इस विषय पर अपने मन में बहुत तर्क-वितर्क करता रहा।

भण्डि : और तर्क-वितर्क के पश्चात् तुम इसे उचित मानने लगे हो?

माधवगुप्त : यह मैंने कहाँ कहा? मैं तो केवल इतना ही कहता हूँ कि इसके औचित्य और अनौचित्य के सम्बन्ध में मैं कोई निर्णय नहीं कर सका हूँ।

भण्डि : परन्तु, अब तुम इसके वैसे विरोधी नहीं रहे, जैसे उस दिन थे, जिस दिन परमभट्टारक ने निर्णय किया था।

माधवगुप्त : हाँ, यह सत्य है।

भण्डि : कारण ?

माधवगुप्त : देखो, मित्र, मनुष्य को क्या करना चाहिए और क्या नहीं, इस विषय पर मैं जितना अधिक विचार करता हूँ उतना ही इस निर्णय पर पहुँच जाता हूँ कि इस सम्बन्ध में कभी भी कोई एक बात नहीं कही जा सकती।

भण्डि : कैसे ?

माधवगुप्त : आज जो बात उचित जान पड़ती है कल वही अनुचित दिखने लगती है; और आज जो अनुचित, कल वही उचित।

भण्डि : तब तुम्हारे मतानुसार न कुछ उचित है और न कुछ अनुचित।

माधवगुप्त : शनैः-शनैः मेरा मत इसी प्रकार का बनता जा रहा है, और इसका कारण है।

भण्डि : क्या ?

माधवगुप्त : अब तक मनुष्य का इस बात का पता न लगा सकना कि मानव-समाज किस ओर, किस प्रकार से जा रहा है।

भण्डि : मैं तुम्हारे इस कथन का अर्थ ही नहीं समझा।

माधवगुप्त : मैं समझाने का प्रयत्न करता हूँ। मनुष्य जब पृथ्वी में किसी वस्तु का बीज बोता है, तब उसे इस बात का निश्चय रहता है न कि अमुक बीज से अमुक प्रकार का ही पौधा निकलेगा ?

भण्डि : अवश्य !

माधवगुप्त : परन्तु यही बात वह अपनी किसी कृति के सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप से नहीं कह सकता।

भण्डि : कैसे ?

माधवगुप्त : कुछ उदाहरणों पर विचार कर देखो। पहले मानव-समाज इस प्रकार के बन्धनों में जकड़ा हुआ न था, जैसा आज है; तब

न धार्मिक बन्धन थे, न समाजिक और न राजनैतिक। मानव-समाज में सुख के लिये इन बन्धनों का आविष्कार हुआ, परन्तु क्या उसके सुख में किसी प्रकार की वृद्धि हुई है ?

भण्डि : इसमें कोई सन्देह है ?

माधवगुप्त : बहुत बड़ा।

भण्डि : यह तो बड़े आश्चर्य की बात कहते हो।

माधवगुप्त : तुम्हें केवल ऐसा जान पड़ता है; परन्तु यदि तुम इस प्रश्न के मूल तक जाकर विचार करोगे तो तुम्हें कुछ आश्चर्य न होगा। जितने धर्मों का आविष्कार हुआ, सबसे यही घोषणा की थी कि वे सच्ची शान्ति स्थापित कर देंगे; पर उनसे उलटा कलह बढ़ा है। सामाजिक संगठन में विवाह सब से प्रधान बन्धन है। वह दम्पती के सुख का ठेका लेना चाहता था, पर अधिकतर पति-पत्नी दुखी ही दीख पड़ते हैं। इतना ही नहीं, पति-पत्नी के परस्पर प्रेम को स्थायी रूप से बाँध देने के लिये जो सन्तानोत्पत्ति ग्रन्थि के समान मानी जाती है, वह ग्रन्थि भी ग्रन्थि का कार्य न कर प्रायः छुरिका का ही कार्य करती है। राज-सत्ता प्रधानतया रक्त-पात और लूट-मार बन्द करने के लिए स्थापित हुई थी। परन्तु सब से अधिक रक्त-पात और लूट राज-सत्ता द्वारा ही हुई है।

भण्डि : (**झुँझलाकर**) फिर क्या किया जाय ?

माधवगुप्त : यही तो अभी तक निर्णय नहीं हो सका, क्योंकि जैसा मैंने अभी कहा कि मनुष्य को अब तक यह ज्ञात नहीं हुआ है कि मनुष्य-समाज किस ओर और किस प्रकार जा रहा है।

भण्डि : (**घृणा से हँसकर**) तुम्हारे कहने का तो यह अर्थ होता है कि मनुष्य को अकर्मण्य हो जाना चाहिए।

माधवगुप्त : कदापि नहीं; परन्तु वह जो अपने को सर्वज्ञ मानकर हर बात करता है, यह अवश्य भ्रम है।

भण्डि : और परमभट्टारक जिस प्रकार नयी-नयी बातें कर यह मानते हैं कि वे देश और संसार का कल्याण कर रहे हैं, यह भ्रम

नहीं है ?

माधवगुप्त : जहाँ तक मैं जानता हूँ वे अपने को सर्वज्ञ मानकर कुछ नहीं करते ।

भण्डि : फिर ?

माधवगुप्त : वे जो नयी बातें करते हैं, प्रयोगात्मक दृष्टि से करते हैं, जैसा सभी महान पुरुषों ने किया है ।

भण्डि : अब तक उसके सारे प्रयोग असफल हुए हैं । पहले वे सिंहासन पर न बैठ साधारण पुरुष के समान प्रजा की सेवा करना चाहते थे, वह न हुआ, और उन्हें सिंहासनासीन होना पड़ा । फिर उन्होंने सम्राज्ञी को सिंहासन पर बिठा, महिलाओं को पुरुषों के सदृश अधिकार दिलाने की बात सोची, पर आज भी पुरुष उच्च और महिलायें निम्न मानी जाती हैं । फिर उन्होंने स्वयं कान्य-कुब्ज का माण्डलिक बनकर अपने उदाहरण द्वारा बिना युद्ध के ही प्रत्येक देश को साम्राज्य का समानाधिकारी बनना चाहा, वह प्रयत्न भी असफल हुआ और उन्हें अनेक वर्ष नहीं, परन्तु अनेक युग युद्ध में व्यतीत करने पड़े । अब राज्यों की परस्पर मैत्री और युद्ध के लिए धन-संग्रह के विरोध में स्वयं सर्वस्व-दान कर, अन्य नरेशों को इस दिशा में आकर्षित करने का यह प्रयोग कहाँ तक सफल होगा, सो तो पहले प्रयोगों से भी अधिक स्पष्ट है ।

माधवगुप्त : परन्तु, मित्र, छोटी-छोटी बातों में सफलता प्राप्त करने की अपेक्षा महान् कार्यों में असफल हो जाना कहीं श्रेष्ठ है । फिर आज परमभट्टारक भी जो कुछ कर रहे हैं उसका आगे चलकर संसार पर क्या प्रभाव पड़ता है, उसे कौन कह सकता है ?

भण्डि : आज उनके कार्यों का कितना प्रभाव पड़ा, यह हमने देख लिया । उनके पश्चात्, उनके विवाह न करने और सन्तान न होने के कारण सारे देश में जो उथल-पुथल मचेगी, उसकी भी कल्पना की जा सकती है ।

माधवगुप्त : अनेक नरेशों की तो सन्तति थी, फिर उथल-पुथल क्यों

मची ? देखो, मित्र, मैं यह नहीं कहता कि परमभट्टारक की सारी कृतियों का अच्छा ही फल होगा। मेरा कहना केवल इतना ही है कि संसार में महान् व्यक्ति महान् कार्यों का प्रयोग करने को आते हैं, उनके कार्य किसी न किसी नवीन दिशा में होते हैं, इतना गत इतिहास से अवश्य जान पड़ता है। अनेक कार्यों का फल तत्काल मिलता है और अनेक का शताब्दियों पश्चात्। किन बातों से मानव-समाज का स्थायी कल्याण होगा, यह अब तक सिद्ध नहीं हो पाया; क्योंकि जैसा मैंने अभी दो बार तुम से कहा कि हम यह नहीं जानते कि मानव-समाज किस ओर किस प्रकार जा रहा है। मैं परमभट्टारक को महापुरुष मानता हूँ। जो बातें वे करना चाहते हैं उन पर मैं सम्मति अवश्य देता हूँ, परन्तु अन्त में उनके निर्णय को मैं मस्तक भुकाकर स्वीकृत कर लेता हूँ; क्योंकि जहाँ तक उनकी पहुँच है, वहाँ तक मैं अपनी नहीं मानता।

भण्डि : तुम्हारे इस सिद्धान्त के अनुसार साधारण कोटि के मनुष्यों के कार्य की तो कोई दिशा रह ही नहीं जाती।

माधवगुप्त : यह मैं नहीं मानता। उनकी कार्य-दिशा महापुरुषों का अनुसरण है।

भण्डि : परन्तु, महापुरुष भी एक दिशा में तो नहीं चले हैं, किसका अनुसरण किया जाये ?

माधवगुप्त : जो जिसे महान् पुरुष दिखे तथा जिसकी कृति में कम से कम स्वार्थ और अधिक से अधिक परार्थ एवं परमार्थ दृष्टि-गोचर हो।

भण्डि : यह सब…

[बाँयी ओर से एक गुप्तचर का प्रवेश। वह अधेड़ अवस्था का साधारण मनुष्य है। श्वेत उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किए है। उसके मुख पर गम्भीरता का साम्राज्य है। वह माधवगुप्त और भण्डि का अभिवादन करता है। दोनों अभिवादन का उत्तर देते हैं।]

माधवगुप्त : क्या शशांक और आदित्यसेन के विद्रोह का कोई समाचार है ?

गुप्तचर : जी हाँ, बड़ा भीषण संवाद है।

माधवगुप्त : (**कुछ घबराकर**) कैसा ?

गुप्तचर : (**इधर-उधर देखकर, धीरे-धीरे**) बोधि-वृक्ष के काटने के पश्चात् अब उन्होंने परमभट्टारक की हत्या का षडयन्त्र किया है।

[**माधवगुप्त और भण्डि चौंक पड़ते हैं।**]

माधवगुप्त : किस प्रकार ?

गुप्तचर : यज्ञ के दिन जब जन-समुदाय के बीच शरीर-रक्षकों से रहित परमभट्टारक आदित्य, शिव और बुद्ध का पूजन कर सर्वस्व-दान करेंगे उसी दिन यह कार्य करने के लिए शशांक और आदित्यसेन ने धर्मान्ध ब्राह्मणों को नियुक्त किया है।

[**माधवगुप्त सिर झुका लेता है। भण्डि और गुप्तचर एकटक माधवगुप्त की ओर देखते हैं। कुछ देर तक स्तब्धता रहती है।**]

माधवगुप्त : (**धीरे-धीरे सिर उठाकर भण्डि से**) मित्र, परमभट्टारक ने युद्ध का त्याग किया है, हमने तो नहीं ?

भण्डि : कदापि नहीं।

माधवगुप्त : तो हमारा इस समय कुछ कर्त्तव्य है। मैंने बाल्यावस्था से ही जिस प्रकार परमभट्टारक का साथ दिया है, उसे तुमसे अधिक कोई नहीं जानता। आज भी अनेक व्यक्ति जिस दृष्टि से मुझे देखते हैं, वह भी तुमसे छिपा हुआ नहीं है। अब तक गुप्तों और वर्द्धनों के संघर्ष का प्रश्न था, परन्तु आज तो एक ओर मेरे जीवन-सर्वस्व परमभट्टारक, और दूसरी ओर मेरे एकमात्र पुत्र का प्रश्न है। मित्र, मेरे हृदय में परमभट्टारक के प्रति कितना स्नेह है इस का प्रमाण देने का आज से बढ़कर मुझे और अवसर नहीं मिलेगा। चलो, भीतर बैठकर (**गुप्तचर की ओर संकेत कर**) इसका सारा वृत्त सुन लें और अपना भावी कर्त्तव्य निश्चित करें। (**कुछ रुक कर**) हाँ, इस बात का ध्यान रहे कि इस समय यह सारा कार्य इस

प्रकार करना होगा कि परमभट्टारक तक को, हम लोग क्या करने वाले हैं, इसका भी पता न लगे।

भण्डि : अवश्य, नहीं तो न जाने हमारे प्रयत्नों को विफल करने के लिये वे क्या कर बैठेंगे।

माधवगुप्त : तो फिर चलो, इस समय एक-एक क्षण अमूल्य है।

भण्डि : अवश्य, अवश्य !

[तीनों का प्रस्थान, परदा गिरता है।]

तीसरा दृश्य

स्थान : प्रयाग का एक भाग

समय : प्रातःकाल

[**दूरी पर छोटे-छोटे गृह दिखाई पड़ते हैं। सँकरा मार्ग है। प्रातःकाल का प्रकाश फैला हुआ है। दो पुरवासियों का बायीं ओर से और दो का दाहिनी ओर से प्रवेश। सभी उत्तरीय और अधोवस्त्र पहने हैं। आभूषण भी धारण किये हैं। दाहिनी ओर का एक व्यक्ति हाथ में एक कागज लिये है।**]

बाँयीं ओर का पहला : (दाहिनी ओर से आनेवाले से) कहो, यज्ञशाला से आ रहे हो?

दाहिनी ओर का पहला : जी हाँ, वहीं से।

बाँयीं ओर का दूसरा : क्या समाचार है?

दाहिनी ओर का वही : अब तो सब व्यवस्था पूर्ण हो चुकी।

बाँयीं ओर का पहला : कल प्रातःकाल ही तो यज्ञ है, व्यवस्था कैसे न हो चुकती, सब लोग आ गये?

बाँयीं ओर का दूसरा : हाँ, जिन्हें आना था वे आ गये।

बाँयीं ओर का पहला : कितने माण्डलिक आये हैं?

दाहिनी ओर का पहला : कामरूप के कुमारराज, बल्लभी के ध्रुवसेन तथा अठारह और।

बाँयीं ओर का दूसरा : तो प्रायः सभी, माण्डलीक आ गये?

दाहिनी ओर का पहला : हाँ, प्रायः सभी, और सब अपनी-अपनी महिषियों के संग आये हैं।

बाँयीं ओर का पहला : और धर्म संस्थाओं के प्रतिनिधि?

दाहिनी ओर का दूसरा : अरे, वे तो बहुत हैं! कहाँ तक गिनती गिनाऊँ।

बाँयीं ओर का दूसरा : सारे आर्यावर्त्त की प्रजा' भी तो एकत्रित हुई है। ऐसी भीड़ तो कुम्भ पर भी नहीं होती।

बाँयीं ओर का पहला : कुम्भ तो हर बारहवें वर्ष होता है, यह तो अश्वमेध और राजसूय-यज्ञ के समान यज्ञ है, जिसका अवसर सैंकड़ों और सहस्रों वर्षों के पश्चात् आता है।

बांयीं ओर का पहला : इसमें क्या संदेह है !

दाहिनी ओर का पहला : अब तो यज्ञ का सारा कार्य-क्रम भी लिखकर यज्ञशाला के द्वार पर लगा दिया गया है।

बाँयीं ओर का पहला : क्या है, बताओ ?

दाहिनी ओर का दूसरा . मैं तो लिख लाया हूँ।

बाँयीं ओर ला पहला : सुनाओ, सुनाओ।

दाहिनी ओर का दूसरा : (**हाथ का कागज पढ़ते हुए**) सुनो, प्रातःकाल की प्रार्थना के अनन्तर शिविका पर भगवान शिव, भगवान बुद्ध और भगवान् आदित्य की मूर्तियों का यज्ञशाला में आगमन होगा। शिविका-वाहक का कार्य, सम्राज्ञी, राज्यश्री, महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन, कामरूपाधिपति कुमारराज भास्करवर्मन और वल्लभी-नरेश सेनापति ध्रुवसेन करेंगे। शिविका के सम्मुख चलनेवाले पंचमहावाद्यों को पाँच माण्डलिक बजावेंगे। दो माण्डलिक नरेश शिविका के सामने प्रतिहारी के रूप में चलेंगे। चार माण्डलिक नरपति शिविका पर तने हुए वितान के स्तम्भों को उठावेंगे, और शेष माण्डलिक नरेशों में से एक शिविका पर छत्र लगावेंगे, दो चामर, दो मोरछल और दो व्यजन डुलावेंगे। इसके पश्चात् महाराजाधिराज साम्राज्य के समस्त कोष का दान करेंगे जो सब वर्णों के निर्धनों को बाँट दिया जायगा।

बाँयीं ओर का दूसरा : सब वर्णों में दान का बाँटना ही तो आर्य-धर्म के प्रतिकूल माना जाता है।

बाँयीं ओर का पहला : उँह, ऐसे विचारवाले कुछ व्यक्ति तो सदा ही रहते हैं। स्मरण नहीं है कि कुछ ब्राह्मणों ने सम्राज्ञी के राज्याभिषेक का भी विरोध किया था।

दाहिनी ओर का दूसरा : इतना ही क्यों, शशांक के वर्तमान विद्रोह को कई ब्राह्मण धार्मिक विद्रोह मानते हैं।

दाहिनी ओर का पहला : और बोधि-वृक्ष को काटनेवाली कृति इस प्रकार के विचार वालों का समर्थन करती है।

बाँयीं ओर का पहला : शशांक के विद्रोह का कारण मेरी दृष्टि में तो धार्मिक न होकर राजनैतिक है।

दाहिनी ओर का दूसरा : (मुस्कराकर) तब तो आप यह भी मानते होंगे कि भीतर से उसके बड़े-बड़े सहायक भी हैं।

बाँयीं ओर का पहला : (मुस्कराकर) मैं इस सम्बन्ध में कुछ न कहना ही अच्छा समझता हूँ।

दाहिनी ओर का पहला : परन्तु, यदि आप आदित्यसेन के कारण माधवगुप्त पर सन्देह करते हैं, और उनका इस समय एकाएक लापता हो जाना इस सन्देह का और भी पुष्ट कारण मानते हैं, तो मैं कहना चाहता हूँ कि आपका सन्देह भारी भूल से भरा हुआ है। देखिए...

बाँयीं ओर का दूसरा : अरे छोड़िए, इस चर्चा को ! यज्ञ की चर्चा करते-करते हम लोग राजनीतिक चर्चा करने लगे।

दाहिनी ओर का पहला : यह आपने ही आरम्भ की है, महाशय।

बाँयीं ओर का दूसरा : मैं अपना दोष स्वीकार करता हूँ। **(कुछ रुककर अपने साथी से)** चलो न, हम लोग भी यज्ञशाला देख आवें।

बाँयीं ओर का पहला : हाँ, हाँ, चलो !

[बाँयी ओर से आनेवालों का दाहिनी ओर और दाहिनी ओर से आनेवालों का बाँयीं ओर प्रस्थान। परदा गिरता है।]

चौथा दृश्य

स्थान : प्रयाग में यज्ञशाला

समय : प्रातःकाल

[दूरी पर गंगा बह रही है, उसका श्वेत नीर उदय होते हुए सूर्य की सुनहरी किरणों से चमक रहा है। बीच में सुवर्ण के रत्न-जटित स्तम्भों के सहारे सुनहरी काम का एक वितान तना हुआ है। वितान के पीछे, बीचोंबीच कान्यकुब्ज के कोष का समस्त धन सुवर्ण के घटों में भरा हुआ रखा है। ये घट त्रिकोणाकार में एक-दूसरे के ऊपर सजाये गये हैं, अतः उनके समूह सुवर्ण-पर्वत के शिखरों के समान दृष्टिगोचर होते हैं। इन घटों के आस-पास राजकर्मचारी बैठे हुए हैं, परन्तु इनमें माधवगुप्त और भण्डि नहीं हैं। वितान के बीचोंबीच सुवर्ण का एक सिंहासन रखा है। इस सिंहासन की दाहिनी ओर महाधर्माध्यक्ष और बाँयीं ओर यानचांग बैठे हुए हैं। धर्माध्यक्ष के निकट की सुवर्ण की चौकियों पर सुवर्ण के थालों में पूजन की सामग्री रखी है। धर्माध्यक्ष की दाहिनी ओर धर्म-संस्थाओं के प्रतिनिधि और राज्य के प्रतिष्ठित पुरुष बैठे हैं। और इनकी दाहिनी ओर पुरुष जन-समुदाय दृष्टिगोचर होता है। सिंहासन के बाँयीं ओर माण्डलिक नरेशों की रानियाँ बैठी हैं। इन्हीं में जयमाला और अलका भी हैं। इनके बाँयीं ओर स्त्री जन-समुदाय दिखायी पड़ता है, जिसमें छोटे-छोटे बालक भी हैं। सब लोग पृथ्वी पर की बिछावन पर ही बैठे हैं। सिंहासन के सामने बीच का भाग रिक्त है। कुछ देर के उपरान्त नेपथ्य में पंचमहावाद्य बजते हैं, जिन्हें सुनते ही सब लोग हाथ बाँध-बाँधकर खड़े हो जाते हैं। वाद्य बन्द होते ही पाँचवें दृश्य में वर्णित प्रणाली से बुद्ध, शिव और आदित्य की मूर्तियाँ सुवर्ण की रत्नजटित शिविका पर आती हैं। उस पर चार माण्डलिक नरेश छोटा-सा वितान ताने हैं। शिविका पर सुनहरी काम है। उसके चारों ओर छोटे-छोटे सुवर्ण के स्तम्भ हैं जो रत्नों से जड़े हुए हैं। छत्र, चामर, मोरछल और व्यजनों की डाँडियाँ भी रत्नजटित

सुवर्ण की हैं। छत्र श्वेत कौशेय का है जिस पर रुपहरी काम है और मोतियों की झालर के व्यजन सुनहरी वस्त्र के हैं। सभी नरेशों की वेश-भूषा हर्ष की सदा की वेश-भूषा के समान है। सबके सिरों पर श्वेत मालाएँ अर्द्धचन्द्राकार रूप में बँधी हुई हैं। शिविका के आते ही 'भगवान् शिव की जय,' 'भगवान् आदित्य की जय', 'भगवान् बुद्ध की जय' के नाद से यज्ञशाला गूँज उठती है। शिविका सिंहासन के सामने के रिक्त स्थान पर रखी जाती है और धर्माध्यक्ष आगे बढ़कर शिविका में से तीनों प्रतिमाओं को उठाकर एक-एक कर सिंहासन पर प्रतिष्ठित करते हैं। छत्र, चामर, मोरछल और व्यजन लिये हुए सातों माण्डलिक नरेश, सिंहासन के पीछे जाकर खड़े होते हैं और छत्रवाले छत्र लगाते तथा अन्य नृपतिगण चामर, मोरछल और व्यजन डुलाना आरम्भ करते हैं। प्रतिहारी के रूप में आये हुए दोनों माण्डलिक नरेश अपनी छड़ियों के संग सिंहासन के उभय ओर खड़े हो जाते हैं। हर्ष, राज्यश्री, कुमारराज और ध्रुवसेन शिविका को जिस मार्ग से लाये थे, उसी मार्ग से बाहर ले जाते हैं। पंचमहावाद्य वाले माण्डलिक नरेश शिविका के आगे तथा वितान के स्तम्भों को लिये हुए जो माण्डलिक आये थे, वे उस वितान को शिविका पर उसी प्रकार ताने हुए, शिविका के साथ-साथ बाहर जाते हैं कुछ ही देर में ये लोग खाली हाथ लौटकर आ जाते हैं। सिंहासन के सामने रिक्त भाग में सिंहासन की ओर मुख कर आगे हर्ष तथा राज्यश्री, उनके पीछे कुमारराज तथा ध्रुवसेन और इनके पीछे अन्य माण्डलिक राजा बैठते हैं। खड़े हुए शेष जन भी बैठ जाते हैं। अब धर्माध्यक्ष एवं धर्म-संस्थाओं के अन्य प्रतिनिधिगण वेद-ध्वनि आरम्भ करते हैं। हर्ष तीनों प्रतिमाओं का संक्षिप्त पूजन कर सुवर्ण-थाल में आरती करते हैं और अन्तिम पुष्पांजलि में सारा जन-समुदाय मूर्तियों पर पुष्प चढ़ाता है। वेद-ध्वनि बन्द होती है और हर्ष कान्यकुब्ज के समस्त कोष का दान-संकल्प करते हैं। महाधर्माध्यक्ष संकल्प बोलता है। इस संकल्प के पश्चात् हर्ष अपने कुण्डल, हार, केयूर, वलय और मुद्रिकाएँ उतारकर उनका संकल्प करते हैं।]

हर्ष : (संकल्प करने के पश्चात् खड़े होकर, अपने दोनों हाथ आगे कर राज्यश्री से) सम्राज्ञी, मैं आप से एक वस्त्र की भिक्षा माँगता हूँ, क्योंकि ये बहुमूल्य दुकूल भी दान करूँगा।

[राज्यश्री खड़े होकर आँखों में आँसू भरकर, एक सादा वस्त्र हर्ष को देती है। हर्ष पहले उत्तरीय उतारकर पृथ्वी पर रख देते हैं, फिर राज्यश्री के दिये हुए वस्त्र को पहन अधोवस्त्र भी उतारकर उत्तरीय और अधोवस्त्र हाथ में ले संकल्प के लिए बैठते हैं। महाधर्माध्यक्ष संकल्प बोलना आरम्भ करता है। यज्ञशाला 'परमभट्टारक महाराजाधिराज राजर्षि हर्षवर्द्धन की जय' आदि घोष से गूँज उठती है। इसी समय ब्राह्मणों में से एक ब्राह्मण एकाएक खड़ा होकर अधोवस्त्र में छिपी हुई एक छुरी निकालकर हर्षवर्द्धन की ओर शीघ्रता से बढ़ता है। उसकी यह कृति देख उसके निकट बैठे हुए कुछ ब्राह्मण भी इसी प्रकार छुरिकाएँ निकालकर उस ब्राह्मण पर टूट पड़ते हैं। सभी लोग सिर उठाकर आश्चर्य से स्तम्भित हो इस घटना को देखते हैं। हर्षवर्द्धन की ओर बढ़नेवाले ब्राह्मण को पीछे से छुरिकाएँ निकालने वाले ब्राह्मण आहत कर पकड़ लेते हैं। उसी समय सैनिक वेश में माधवगुप्त का प्रवेश। उसी के साथ चार सैनिक आदित्यसेन को लोहे की शृंखलाओं से बाँधे हुए लाते हैं। माधवगुप्त के मुख पर अत्यधिक उद्विग्नता और आदित्यसेन के मुख पर अत्यधिक क्रोध दृष्टिगोचर होता है। आदित्यसेन सिर झुकाकर खड़ा हो जाता है। माधवगुप्त हर्ष का अभिवादन कर एकटक हर्ष की ओर देखता है। आश्चर्य से स्तम्भित जन-समुदाय, जिसके मुख से अब तक एक शब्द भी न निकला था, और जो ब्राह्मणों की इस घटना को एकटक देख रहा था, अब माधवगुप्त और आदित्यसेन की ओर देखने लगता है; फिर भी किसी के मुख से कुछ नहीं निकलता।]

हर्ष : (माधवगुप्त और आदित्यसेन को देख, आश्चर्य-भरे शब्दों में माधवगुप्त से) माधव, तुम कहाँ चले गये थे ? कब आये ? यह सब क्या है ?

माधवगुप्त : (भर्राये हुए शब्दों में) परमभट्टारक की हत्या का

षड्यन्त्र ! इसी का पता पाकर आपसे बिना कुछ कहे ही मुझे इस षड्यन्त्र के नाश के लिए दूसरे षड्यन्त्र की रचना कर आपके पास से जाने का बाध्य होना पड़ा।

हर्ष : और इस षड्यन्त्र का रचयिता कौन है ?

माधवगुप्त : (**उसी प्रकार के स्वर में**) साम्राज्य के विद्रोही मेरे बन्धु शशांक नरेन्द्रगुप्त और (**आदित्यसेन की ओर संकेत कर**) मेरा पुत्र आदित्यसेन।

[**हर्ष चौंक पड़ता है और फिर सिर झुका लेता है। जन-समुदाय और भी आश्चर्य से आदित्यसेन की ओर देखता है। अब आदित्यसेन क्रोध से अपने होंठ चबाता और हाथों को मलता है। कुछ देर सन्नाटा छाया रहता है।**]

हर्ष : (**धीरे-धीरे सिर उठाते हुए**) एक विद्रोही को तो तुम बन्दी करके लाये, दूसरा विद्रोही कहाँ है ?

माधवगुप्त : (**कुछ सँभलकर**) उसे महाबलाधिकृत भण्डि ने युद्ध में धराशायी किया है।

हर्ष : (**जल्दी से**) मेरे युद्ध त्याग देने पर भी तुम लोगों ने युद्ध किया, इन विद्रोहियों के हृदय-परिवर्तन की प्रतीक्षा नहीं की ?

माधवगुप्त : (**फिर उसी प्रकार के भर्राये हुए स्वर में**) यह युद्ध अनिवार्य था; परमभट्टारक, आततायियों के हृदय में परिवर्तन नहीं होता।

हर्ष : और महाबलाधिकृत भण्डि कहाँ हैं, तुम अकेले कैसे लौटे ?

माधवगुप्त : (**शान्त स्वर में**) चुने हुए सैनिकों की जिस छोटी-सी सेना के साथ हम लोग गये थे, उसी को संग लेकर वे लौट रहे हैं। मैं इस बन्दी को लेकर शीघ्र इसलिए चला आया हूँ कि यज्ञ के अवसर पर पहुँच जाऊँ और देखूं कि षड्यन्त्र को असफल करने का मेरा षड्यन्त्र सफल हो। फिर भी मुझे आने में कुछ विलम्ब तो हो ही गया।

[**हर्ष फिर सिर झुा लेते हैं। फिर कुछ देर तक सन्नाटा छा जाता।**]

हर्ष : (**फिर सिर उठाकर धीरे-धीरे**) एक विद्रोही तो युद्ध में मारा गया।

(आदित्यसेन की ओर संकेत कर) अब इस विद्रोही को भी तुम दण्ड दिलाना चाहते हो।

माधवगुप्त : **(खखारते हुए फिर अत्यधिक भर्राये हुए स्वर में)** जी हाँ।

हर्ष : **(पहले माधवगुप्त, फिर आदित्यसेन और फिर माधवगुप्त की ओर देखकर)** कौन-सा दण्ड ?

माधवगुप्त : **(कठिनाई से बोलते हुए)** मृ···मृ···मृत्यु···दण्ड !

जन-समुदाय के कुछ व्यक्ति : माधवगुप्त की जय !

सारा जन-समुदाय : माधवगुप्त की जय !

[एक ओर से दौड़ते हुए शैलबाला का प्रवेश]

शैलबाला : कहाँ है, मेरा लाल, कहाँ है ?

[शैलबाला बन्दी आदित्यसेन को देख, दौड़कर उससे लिपट जाती है और फूट-फूटकर रोने लगती है। आदित्यसेन उसी मुद्रा में चुपचाप खड़ा रहता है। केवल अपनी दोनों भुजाओं से माँ का आलिंगन कर लेता है। हर्ष फिर सिर झुका लेते हैं। माधवगुप्त कनखियों से शैलबाला एवं आदित्यसेन की ओर देखता है और जन-समुदाय एकटक शैलबाला की ओर। कुछ देर फिर निस्तब्धता रहती है।]

शैलबाला : **(एकाएक आदित्य को छोड़कर हर्ष की ओर बढ़, अपनी साड़ी का छोर फैलाकर)** भिक्षा माँगती हूँ, परमभट्टारक, अपने इस इकलौते पुत्र के प्राणों···

आदित्यसेन **(सिर उठाकर, गरजकर)** क्या, क्या कह रही है ! माँ, क्या कह रही है ? क्षत्राणी होकर भिक्षा ! जो प्राण एक दिन जाना ही है, उसकी भिक्षा ! शत्रु से भिक्षा ! उत्तम होता, यदि मैं तेरे गर्भ में ही प्रवेश न करता। उत्तम होता, यदि मैं जन्मते ही मर जाता। मेरा इस लोक का जीवन तो समाप्त हो ही रहा है, पर मरते समय भी पिता के सदृश क्या माता का भी स्मरण कर मुझे तू गौरव का अनुभव न करने देगी ? क्या माता का नाम लेकर भी यह आदित्यसेन सहर्ष अपने प्राण न दे सकेगा ? **(हर्ष से)** वर्द्धनराज, आप मेरी माता की बात न सुनिए, उस ओर

ध्यान ही न दीजिए। पिताजी के कथनानुसार इस अन्तिम गुप्तवंशीय को प्राणदण्ड देकर मेरे गौरव की रक्षा कीजिए। मेरा गौरव न मेरे पिता पर अवलम्बित है और न माता पर। **(अपना वक्षःस्थल फुलाकर सिर ऊँचा उठाते हुए)** वह मुझ पर अवलंबित है, केवल मुझ पर !

हर्ष : **(शान्ति से मुस्कराते हुए)** नवयुवक, तुम सच्चे नवयुवक हो ! युवावस्था में जैसा तेज, जैसा उत्साह, जैसी निर्भीकता होनी चाहिए वैसी ही तुम में है। परन्तु देखो, तुम्हारे ये सद्गुण तुम्हारे एक विवेकहीन विश्वास के कारण तुम्हें ठीक पथ पर न चलाकर पथ-भ्रष्ट कर रहे हैं। आदित्यसेन, तुम मुझे वृथा ही गुप्त-वंश का शत्रु मान रहे हो। मैंने अपने वंश का गौरव बढ़ाने के लिए यह राज्य ग्रहण नहीं किया है। मेरे विवाह न करने के कारण वर्द्धन वंश का तो कोई वंशज ही न रहेगा। अपने उत्कर्ष के लिए भी यह पद मैंने नहीं लिया है; यदि ऐसा होता तो मैं स्थाण्वीश्वर को कान्यकुब्ज का माण्डलिक राज्य क्यों बनाता ? पुत्र, मुझे अपने से और अपने वंश से कभी आसक्ति का अनुभव नहीं हुआ, न किसी विशिष्ट धर्म और देश से ही अनुराग; इस विशाल विश्व को ही अपना देश मान, सारे धर्मों पर समान रूप से श्रद्धा रख और अपने-पराये सभी को अपना बन्धु समझ, मैंने अपने जीवन का अब तक का समय व्यतीत करने का प्रयत्न किया है। हाँ; इतने पर भी मुझे अनेक युद्ध करने पड़े हैं, अनेक विद्रोहियों का दमन करना पड़ा है; परन्तु उस परिस्थिति में कदाचित् वह अनिवार्य था। यदि मेरा अब तक का जीवन मेरी अभी कही हुई बातों को सिद्ध करने में समर्थ नहीं हैं, तो मैं तुम्हें अपने कथन की सत्यता का अन्य कौन-सा प्रमाण दे सकता हूँ ? **(कुछ रुककर)** मैं तुम्हें मुक्त करता हूँ, आदित्यसेन;- इसलिए नहीं कि तुम्हारी माता ने मुझ से तुम्हारे प्राणों की भिक्षा माँगी है, अपितु इसलिए कि तुम से अधिक तेजस्वी, तुमसे अधिक उत्साही, तुमसे अधिक निर्भीक अन्य कोई युवक मुझे इस समय इस आर्यावर्त्त में दिखाई

ही नहीं देता। तुमने यदि इन सद्गुणों का अपने और अपने वंश के उत्कर्ष में उपयोग न कर लोक-सेवा में उपयोग किया तो तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम इस आर्यावर्त्त के परम प्रतापी सच्चे लोक-सेवी सम्राट् होगे और तुम्हारी कृति से तुम स्वयं तथा यह जगत् दोनों ही अनुपम सुख का अनुभव करेंगे। **(सैनिकों से)** छोड़ दो सैनिको, आदित्यसेन को मुक्त कर दो !

जन-समुदाय : (एक स्वर से) राजर्षि हर्षवर्द्धन की जय !

[सैनिक आदित्यसेन को लोहे की शृंखलाओं से मुक्त करते हैं। वह बिना कुछ कहे अथवा बिना किसी का अभिवादन किये, कुछ विचार करते हुए धीरे-धीरे जाता है। माधवगुप्त कनखियों से उसकी ओर देखता है। शैलबाला के नेत्रों से आँसू बहने लगते हैं। हर्ष पहले माधवगुप्त और फिर शैलबाला की ओर देख सिर झुका लेते हैं। जन समुदाय हर्ष, माधवगुप्त और शैलबाला की ओर देखता है। उसी समय कुछ दूरी पर मण्डप में अग्नि लगती है। हल्ला होता है। कुछ लोग भागते हैं।]

हर्ष : (माधवगुप्त से) हैं ! यह क्या माधव, यह भी क्या कुचक्रियों का कोई कुचक्र है ?

माधवगुप्त : (जल्दी से) जान तो यही पड़ता है, परमभट्टारक, परन्तु चिन्ता नहीं, इसके बुझाने का अभी प्रबन्ध करता हूँ। इस अग्नि के संग ही आर्यावर्त्त के साम्राज्य के प्रति विद्रोहियों की अग्नि भी सदा के लिए शान्त हो जायगी।

यवनिका

समाप्त